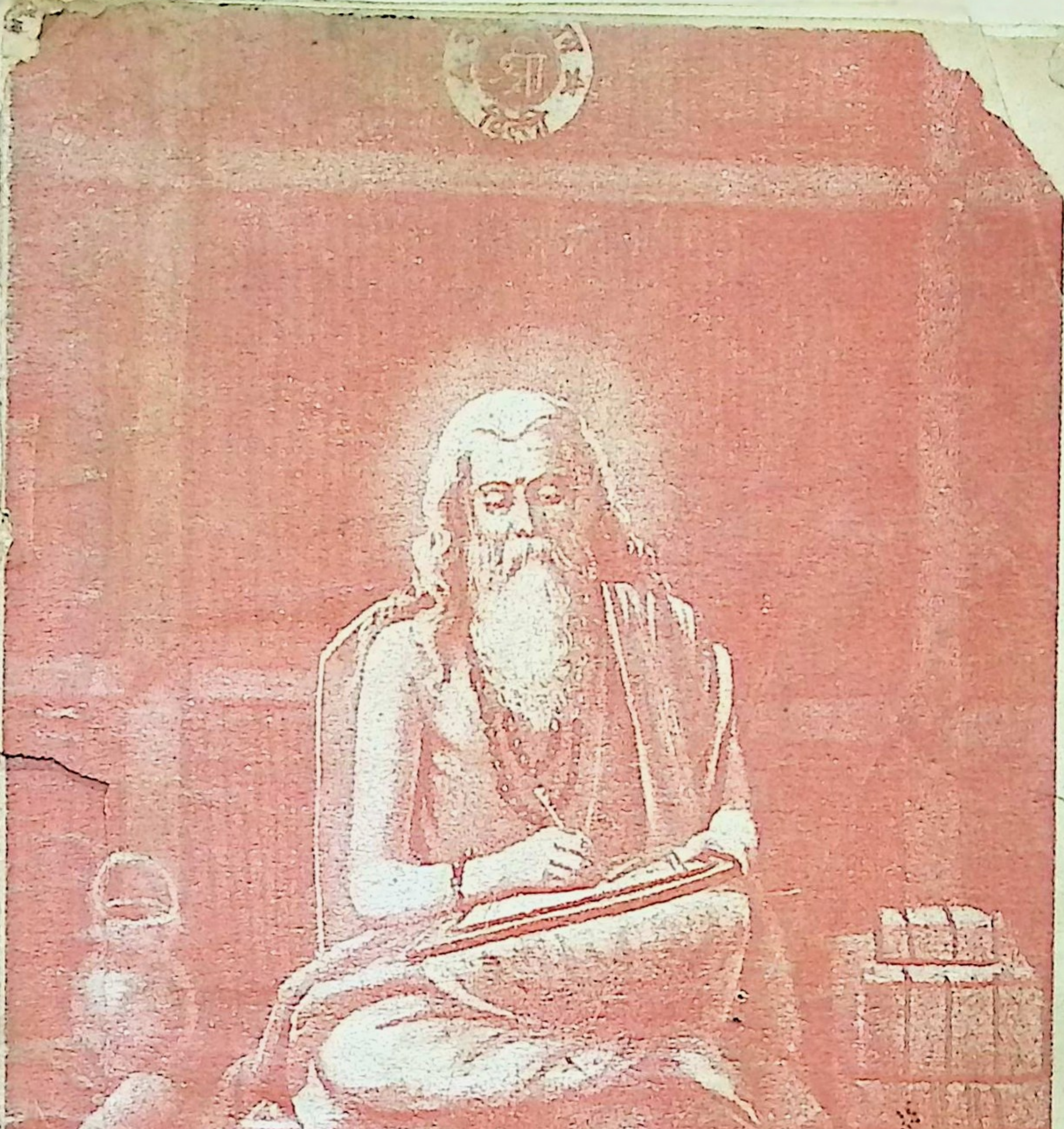

वर्ष ३
अङ्क १०

गुरुप्रसाद

अक्टूबर
१९६३

B/31

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

गुरु प्रसाद

आध्यात्मिक व दार्शनिक मासिक पत्र

वार्षिक मूल्य ६) रुपये एक प्रति ५० न० पै०

कार्य-कारिणी समिति

१. अनन्त श्रीविभूषित
श्री स्वामी हरिहर जी महाराज
२. कर्नल बी० एन० खन्ना
३. श्रीमती धनराज किशोरी कौल
४. श्री एच० आर० नन्दा
५. श्री जगमोहन नाथ जुत्शी
६. श्री नरदेव सिंह
७. श्री जीवन जालपुरी

गीता आश्रम प्रकाशन
सदर बाजार, दिल्ली कैण्ट
टेलीफोन नं० ३६१०८०

अक्टूबर, १९६३

वर्ष ३
अङ्क ०

अनुक्रमणिका

विषय	लेखक	पृष्ठ
वन्दना		२
वचनामृत—पतित पावन		४
स्वामी हरिहर जी महाराज का दिव्य प्रसाद : विजयोत्सव सन्देश		५
प्रजापति कर्दम	—श्री चन्द्रभानु शर्मा शास्त्री साहित्याचार्य	१३
श्रीराम कथा का माहात्म्य	—श्री एच० आर० नन्दा	२२
भगवान राम का उपदेश	—श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी	२६
सीता जी के प्रति (कविता)	—सुश्री कांति चौहान	४७
पुण्यात्मा भरत का स्वरूप	—श्री खेमपाल सिंह रघुवंशी	५१
जय तुलसी (कविता)	—श्री मिश्र बन्धु	६१
माता सीता : नारी परिपूर्णता की प्रतीक	—श्रीमती धनराजकिशोरी कौल	६२
गुह्य ज्ञान	—श्री जीवन जालपुरी	६६
गीता के श्रीकृष्ण	—आचार्य सुरेन्द्रनारायण मिश्र एम० ए०	७२
गोस्वामी जी की निष्काम भक्ति	—एक भक्त के उद्‌गार	७६
गीता जी की योगत्रय मीमांसा	—श्री छितानीप्रसाद शास्त्री	८६
तुलसी महिमा कविता)	—मिश्र बन्धु	६३
आश्रम समाचार		६४

गुरु प्रसाद

वर्ष : ३ अक्टूबर १९६३ अङ्क १०

वन्दना

भद्र कर्णेभिः श्रृणुयाम् देवा भद्र पश्येमाक्षभिर्यजत्र ।
स्थिरैरङ्गै स्तुष्टुवा छं सस्तन् भिर्व्यशेमहि देव हितं यदायुः ।।

हे जगदीश्वर ! हम कानों से सदा अच्छी बातें ही सुनें—आंखें सदा ही अच्छे दृश्य देखें—हमारे सारे अङ्ग स्वस्थ रहें जिससे निर्बाध होकर हम दैवीय कार्यों को ही अपने जीवन में सफलतापूर्वक करते रहें। यह आपके आशीर्वाद और अनुग्रह से हो सकता है। अतः तेरी ही शरण आए हैं।

पतित-पावन

हे पतित पावन ! प्रकृति के संयोग से हमारे अन्दर असुन्दर तत्वों की सृष्टि होती रहती है । असुन्दर कभी सुन्दर का निर्माण नहीं कर पाया है । सौंदर्य वास्तव में वहाँ ही है, जहां आप की दिव्य अलौकिक ज्योति जगमगा रही है । इस पावन ज्योति में ही हमें आपका पावन स्वरूप दिखाई दे । ऐसी शक्ति सामर्थ्य हमें प्रदान करो । जिससे इस पतित अवस्था में से निकल कर हम तुम्हारे अनुरूप जीवन में सौंदर्य और देवत्व की प्राप्ति कर सकें । हमारी शक्ति तो अत्यल्प है । आपका ही सहारा है जहां से आशा की किरण दिखाई दे रही है । मन मोहन ! जागो मेरी अंधी-सी दुनिया में उजाला कर दो ।

स्वामी हरिहर जी महाराज

का

दिव्य प्रसाद

श्री राम विजयोत्सव का संदेश

जिस त्याग और वैराग्य की शिक्षा श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने दी है, जिस असंग स्वरूप की गीता के १५वें अध्याय में उन्होंने व्याख्या की है और अपने सगे सम्बन्धियों के मिथ्या जाल में फँसे, कर्त्तव्य मार्ग से हटे अर्जुन को गीताजी का आध्यात्मिक उपदेश सुनाकर कर्त्तव्य परायण बनाया है। भगवान राम उस आध्यात्मिक स्वरूप की साक्षात् मूर्ति थे। वे तो साक्षात् पूर्ण पुरुष थे कहीं न्यूनता ही नहीं।

मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में मनुष्य जीवन की सभी मर्यादाओं का उन्होंने कठोरता से पालन किया।

लाखों वर्षों बीत जाने पर भी इससे ऊँची मर्यादाओं व पूर्णता की कल्पना तक नहीं की जा सकती है।

महात्मा भरत के स्वभाव से अपरिचित उनकी माता ने पुत्र के लिए राज्य तो प्राप्त कर लिया परन्तु महात्मा भरत के स्वभाव को अपने अनुकूल वह न बना सकीं।

भरत चित्रकूट पर्वत पर पहुँचकर अयोध्या की राजगद्दी भगवान के चरणों में समर्पित करते हुए बोले :—

सान्त्विता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद् ददामि तवैवाहं भुङ्क्ष्व राजमकण्टकम् ॥

हे रघुकुल मणि ! पिता जी ने अपना वचन सत्य करने की अभिलाषा से मेरी माता केकई को प्रसन्न कर दिया । मां ने भी अपनी इच्छा पूरी कर ली और मुझे राज दे दिया । परन्तु मैं अब यह राज अकण्टक रूप से अपनी तुच्छ भेंट स्वरूप आप के चरणों में भेंट करने आया हूँ । आप ही इसका उपयोग और पालन कीजिये ।

त्याग की कितनी ऊँची श्रेणी है भरत का यह भाव—

पर इस त्याग से बढ़कर भी एक ऊँची अत्यन्त ऊँची, अवस्था है जिसके सिंहासन पर भगवान राम आसीन हैं—

भगवान राम तो जैसे त्याग की साक्षात् मूर्ति बन कर अपने बाद आने वाले लाखों प्राणियों के जीवन का उद्धार ही करने आये थे । धीर गंभीर वाणी में बोले—

नात्मन काम कारोहि पुरुषोऽयमनीश्वरः ।
इतश्चेतरतश्चैन कृतान्तः परिकर्षति ॥

हे भाई इस शरीर में यह जीवात्मा ईश्वर के समान स्वतन्त्र नहीं है । कोई भी मनुष्य इस संसार में अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता । यह मनुष्य काल पुरुष के हाथ की कठपुतली है । यह काल ही इस जीवात्मा को इधर से उधर खींचता रहता है ।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
सयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त च जीवनम् ॥

वस्तुओं और संसार के भोग्य पदार्थों का कितना ही संग्रह कर लो अन्त में सभी ने नष्ट हो जाना है और जीवन

का अंत भी मृत्यु के रूप में निश्चित किया हुआ। इस नियम को, कोई कितना ही समर्थ हो, बदल नहीं सकता है।

यथाफलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम्।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्रमरणाद् भयम्॥

जैसे पके हुए फलों को उनके गिर पड़ने के सिवाय कोई भय नहीं होता। फलों के सौन्दर्य उनके स्वाद और उनकी उपयोगिता संदेह रहित होते हुए भी अपने स्थान से उनका अलग हो जाना निश्चित है। ठीक उसी प्रकार मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह संसार में निर्भय जीवन बिताएँ। मनुष्य को निर्भयता के सभी साधन और सामर्थ्य दिये गये हैं। परन्तु एक साधन उसको नहीं मिला वह है मृत्यु से अपनी रक्षा का। इसलिए मृत्यु उसके लिए सदा भयदायिनी शक्ति है।

यथाऽऽगारं दृढ़स्थूणं जीर्णं भूत्वोपसीदति।
तथा वसीदन्ति नरा जरा मृत्यु वशं गता॥

जैसे सुदृढ़ से सुदृढ़ खम्भा भी समय पकने पर पुराना होते ही नष्ट भी हो जाता है उसी प्रकार मनुष्य बुढ़ापे और मृत्यु के वश में है। परिणामतः इस शरीर का धर्म ही नष्ट होने का है। यह बदल नहीं सकता।

अत्येति रजनी या तु सान प्रतिनिवर्तते।
यात्येव यमुना पूर्णं समुद्र मुदकार्णवम्।

रात्रि और दिवस प्रकृति के निश्चित नियम हैं। परन्तु प्रत्येक रात्रि पृथक्-पृथक् अपना अस्तित्व रखती है। जो आज की रात है, वह रात जब बीत जाएगी तो वह जो कल फिर

रात आने वाली है वह इससे नितान्त नई रात होगी। वह आज की रात नहीं होगी। यह तो जो आई थी और अन्त में इसका विनाश हो गया है। रात रोज आएगी पर नई ही नई यमुना नदी समुद्र की ओर जा रही है वहाँ से लौटते उसे किसी ने नहीं देखा। यह विधि का शाश्वत नियम है।

अहीरात्राणि गच्छन्ति सर्वेषां प्राणिनामिह।
आयूंषि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलमिवांशवः॥

दिन रात निरन्तर आ रहे हैं, जा रहे हैं। संसार में सभी प्राणियों की आयु को बड़ी तीव्रगति से समाप्त करते जा रहे हैं। जैसे ग्रीष्म की तेज गर्मी से पृथ्वी पर फैला जल शीघ्रता से सूखता हुआ चला जाता है।

जीवन के महान् तत्व ज्ञान को समझाने के पश्चात् श्री राम जी ने जो सार की बात कही, वही भक्त जनों को समझने योग्य रहस्य की वस्तु है। प्रभु बोले :—

आत्मानं अनुशोचत्वं किमन्यमनुशोचसि।
आयुस्तु ही थतेयस्य स्थितस्यास्य गतस्य च॥
सहैव मृत्युर्व्रजति सहमृत्युनिर्षीदति।
गत्वा सुदीर्घं मध्वानं सह मृत्युनिवर्तते॥

भाई ! संसार को समझो, संसार की व्यवस्था को समझो, तुम मेरे वारे में चिन्ता कर रहे हो। तुम्हें ज्ञान नहीं मेरे स्वरूप का, तुम्हारा मोह मेरी इस आयु से और मेरे इस शरीर से है। परन्तु तुम यह नहीं जानते हो कि यह आयु और यह शरीर तो निरन्तर समाप्त होता जा रहा है। और यह नाश

करने वाली मृत्यु साथ ही बैठ रही है। साथ ही उठ रही है। सोने में साथ और जागने में साथ। तुम मुझे दुःखों से क्या बचाने की चिन्ता कर रहे हो। अपने आप की चिन्ता करो मुझे तुम्हारी चिन्ता विशेष है। इसीलिये मैं तुम को तुम्हारे स्वरूप का ज्ञान कराना चाहता हूँ। यहां श्री भगवान ने अपने आपको अन्य (दूसरा) कहकर एक संकेत किया जो उनके आसन के अनुरूप है। अपने सहोदर को तो वे ऐसी ही सांकेतिक भाषा में ही समझा सकते हैं। जिसे अपनी इच्छा से राजा घोषित कर रखा है उसके सन्मुख भगवान बनकर खड़े हो जाएँ ऐसी उनकी वृत्ति नहीं। वे तो पुरुष की उत्तम मर्यादा के प्रतीक हैं। मात्र भाई के अभ्युदय और निःश्रेयस की उन्हें चिन्ता कितनी है। यह उनके शब्दों में स्पष्ट ही झलक है।

भाई कहीं अपने आपको भगवान से पृथक् न समझने लगें इसीलिए भगवान एक बड़ी सुन्दर उपमा से भरत को समझाते हैं। अपने श्री मुख से बोले :—

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महार्णवे।
समेत्य तु व्यपेयातां कालमासाद्य कंचन॥
एवं भार्याश्च पुत्राश्च ज्ञातयश्च वसूनि च।
समेत्य व्यधावन्ति ध्रुवो ह्येषां विनाभवः॥

संसाररूपी एक महान् सागर है। कालरूपी महा नद और नाले इस सागर में आ-आकर अपना अस्तित्व विलीन करते जा रहे हैं। नदियाँ पहाड़ों से निकल कर आती हैं। इन नदियों के गुजरने के मार्गों में बड़े-बड़े वृक्ष खड़े हैं। यह वृक्ष

टूट-टूट कर नदी में गिर पड़ते हैं। यह गिरे हुए काष्ट (लकड़ी) के टुकड़े नदियों में चलते-चलते एक-दूसरे से आ-आकर टकराते हैं। गले मिलते हैं फिर फिर विछुड़ कर अलग-अलग हो जाते हैं। यही अवस्था संसार के जीवधारी मनुष्यों की है। कोई पत्नी है, कोई पुत्र है, कोई अन्य सम्पत्ति है। सब जीवधारी इस महानद में तैर रहे हैं। आपस में एक दूसरे से अनेक सम्बन्ध स्थापित कर रहे हैं। प्रेम व स्थायी निवास की योजनाएं बना रहे हैं। परन्तु क्या किसी पती का किसी पत्नी से सदा साथ निभा। समय पर पत्नी न जाने कहां और पती न जाने कहां। वह संसार का स्थायी लगने वाला सम्बन्ध क्षण भर में समाप्त—

भार्या गृह द्वार जनः श्मसाने।
कर्मानुगे गच्छति जीव एकः॥

पत्नी घर के द्वार पर रोती ही रह गई। पारिवारिक वन्धु-वान्धव श्मसान की चिता में अन्तिम बार मिलकर बिछुड़ गए। और यह महान् यात्री अपने जीवन भर के कर्मों की गठड़ी वांध कर सबको रोता-धोता छोड़कर अकेला फिर अपनी किसी महान् यात्रा के लिए चल पड़ा। फिर किसी महानदी में काष्ट के समान जा मिलेगा, अपने अन्य काष्ट वन्धुओं से। क्योंकि काष्ट काष्ट की जाति एक है स्वभाव एक है। इसलिए सब इकठ्ठे भी हो जाते हैं ऐसा लगता है। यह कभी दो थे ही नहीं, अलग थे ही नहीं। दो होंगे ही नहीं अलग होंगे ही नहीं। इस मिलन की प्रसन्नता में वे नाचते हैं,

कूदते हैं, गाते हैं, आनन्दोत्सव मनाते हैं और इस सब आनन्दोत्सव में उन्हें यह भूल ही जाता है। कि हम कौन हैं, कहां से आए हैं, कहां जाना है। यह संसार का वैभव थोड़ी देर का पड़ाव है। मृत्यु के बाद फिर पड़ाव आएगा—

मौत इस जिन्दगी का वकफा है,
यानी आगे चलेंगे दम लेकर ॥

इसी जीवन मृत्यु के गम्भीर रहस्य को भगवान ने भरत को समझाया कि भाई तुम इस बात की चिन्ता मत करो कि मेरा क्या होगा मैं अवध का राजा बनूं या वनवासी, मैं तो जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा। तुम चिन्ता करो अपनी कि तुम्हारा क्या बनेगा। तुम प्रसन्नतापूर्वक राज्य सुखों का भोग करो। अवध के राज्य को संभालो। तुम्हारी दशा तो ऐसी है :—

यथा हि सार्थं गच्छन्तं ब्रूयात् कश्चित् पथि स्थितः।
अहमप्यागमिष्यामि पृष्ठतो भवतामिति ॥
एवं पूर्वैर्गतो मार्गः पैतृपितामहैर्भुवः।
तमापन्नः कथं शोचेद् यस्यनास्ति व्यतिक्रमः॥

कोई यात्रियों या व्यवसाइयों का समुदाय किसी रास्ते पर जा रहा है। रास्ते में कोई अपरिचित यात्री और भी खड़ा है। वह अकेला होने के नाते उन यात्रियों से कहता है ठहरो ! मुझे भी साथ ले चलो मैं भी आप लोगों के साथ ही चला चलूंगा। और वह उनके पीछे लग जाता है। हे भरत ! इसी प्रकार हमारे पूर्वज, पिता, पितामह आदि जिस मार्ग

पर चले हैं। उसी मार्ग पर सबके लिए चलना अनिवार्य है। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है। भला बताओ जब संसार में जीव की ऐसी स्थिति है तो वह मार्ग पर खड़ा हुआ किस-किस का शोक करेगा। उसका तो एक ही मार्ग व कर्त्तव्य है कि :—

वायसः पतमानस्य स्रोतसोवानिर्वर्तिनः।
आत्मा सुखे नियोक्तव्यः सुख भाजः प्रजाः स्मृताः॥

जैसे नदियों का प्रवाह एक ही ओर रहता है पीछे नहीं लौटता है इसी प्रकार मनुष्य की दिनोंदिन ढलती हुई अवस्था वापिस नहीं लौटती है। उसका क्रमशः विनाश ही हो रहा है। यह सोच कर अपनी आत्मा को कल्याण रूप सुख-धर्म के साधनों में लगाये रहे। क्योंकि एक सत्य ध्रुव निश्चय है कि सभी लोग अपना-अपना कल्याण चाहते हैं।

आत्म कल्याण का कितना उच्चकोटि का उपदेश है।

विजयादशमी मनाने वालों के लिए यही सत्य हृदयंगम कर लेना आवश्यक है। पाप पङ्क में पड़े मानव की जो दुर्दशा है। उसे श्री राम के इस पवित्र उपदेश में शिक्षा ग्रहण कर जीवन की वास्तविकता समझने का प्रयत्न करना चाहिए। पाप एवं प्रकृति के दुर्दमनीय तत्वों पर श्री राम की आध्यात्मिक विजय ही वास्तव में विजयोत्सव के रूप में मनानी कर्त्तव्य कर्म है।

प्रजापति कर्दम

श्री चन्द्रभानु शर्मा शास्त्री साहित्याचार्य्य सिकन्दराबाद

प्रजापति कर्दम स्वयम्भू ब्रह्मा के मानस-पुत्र हैं। अपने प्रिय पुत्र को ब्रह्मा ने सन्तति उत्पन्न कर प्रजा की वृद्धि के लिये आदेश दिया। मुनि कर्दम अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए सरस्वती नदी के तट पर दस सहस्र वर्ष तक तप करने के लिये प्रवृत्त हो गये। वे समाहित मनहोके पूजन के प्रकार से भक्तिपूर्वक प्रपन्न वरद हरि की सेवा करने लगे। यह कृतयुग (सतयुग) का वृत्त है। भगवान् पुण्डरीकाक्ष ने प्रसन्न होकर अपने दिव्य रूप का मुनि को दर्शन दिया। कर्दम मुनि ने आकाश में सूर्य के समान तेजस्वी, श्वेत पद्मों की माला पहिने हुए, चिकने नील केशों से शोभित मुख कमल धारण किये, किरीट, कुण्डल, शंख, चक्र, गदाधारी, श्वेत उत्पल के क्रीडनक को लिये, मन में आनन्द जनक स्मित और दृष्टि से मुक्त, गरुड़ के स्कन्ध देश पर चरणकमल रक्खे हुए, वक्षःस्थल पर श्री तथा गले में कौस्तुभमणि को धारण किये उस हरि को देख हर्ष के अतिरेक से पृथ्वी पर लेटकर मस्तक से प्रणाम किया। अपने मनोरथ को प्राप्त कर हर्षित हुए मुनि ने हाथ जोड़ कर स्तुति करना आरम्भ किया।

ऋषिकर्दम द्वारा भगवान्विष्णु की स्तुति

हे प्रभो, समग्र सत्व के निधि आपके दर्शन से आज हमने नेत्रों की सफलता प्राप्त करली, आपका दर्शन ही जीवन में

महान् फल हैं। उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जन्म पाकर योग साधना से योगीजन आपके दर्शन की ही कामना करते हैं। हे ईश, तुम्हारी माया ने जिनकी बुद्धि को नष्ट कर दिया है, वे तुच्छ, कामनाओं के लिये ही भवसिंधु के लिये पोत रूप आपके चरणों की उपासना करते हैं, उनकी उन कामनाओं को भी आप पूर्ण करते हैं। हे अधीश, यह कामहत लोक आपके द्वारा पाश के समान बद्ध है, हे शुल्क, मैं भी कर्मानुगत हूं, आपके लिये बलि वहन करता हूँ। हे कालात्मक, कामाभिभूत, कर्म-जड़ मुझ जैसे ही आपसे भयभीत हुए कर्म में प्रवृत्त रहते हैं, किन्तु जो आपके गुणों के कथामृत का पान कर भूख प्यास आदि देह धर्मों को विलय कर चुके हैं, उनको यह आपका कालचक्र जगत् के प्राणों को हर कर दौड़ता हुआ भी विचलित नहीं करता है। हे हरि, आप स्वयं एक होते हुए भी इस जगत की सिसृक्षा से दूसरी अपनी योगमाया को ग्रहण कर लेते हैं, आप अपनी शक्तियों से मकड़ी के समान इस जगत् को रचते हैं, पालन करते हैं और ग्रस लेते हैं। हे अधीश, आप अपने भक्तों को मायिक सुख देना उचित नहीं समझते, तथापि, माया से परिच्छिन्न के समान आपने तुलसी की माला को धारण कर मुझे दर्शन दिये हैं, अतः यह आपका रूप भुक्ति और मुक्ति दोनों को ही प्रदान करता है मैं भी गृहणी का इच्छुक हूँ। हे प्रभो, आप अपनी माया से इस लोकतन्त्र का विस्तार करते हैं, अतः करण में आपके स्वरूप की अनुभूति से कर्मफल का भोग नष्ट हो जाता है, सकाम पुरुष में भी आप मनोरथों की वर्षा करते हैं। इस प्रकार स्तुति करके

मुनि ने गरुढ़ की पृष्ठपर आरूढ़ उस हरि को प्रणाम किया !

श्रीभगवान द्वारा वर-प्रदान

हे विप्र, जिस प्रयोजन से यमनियम द्वारा तुमने मेरी पूजा की है, तुम्हारे हृदय के भाव को जानकर पहिले ही मैंने उसकी योजना कर दी है। हे प्रजाध्यक्ष, मुझमें चित्त की एकाग्रता साधने वाले तुम्हारे सदृश पुरुषों से मेरा पूजन व्यर्थ नहीं जाता। ब्रह्मा के पुत्र, सम्राट्, विख्यात मंगल, मुनि-मनु सप्त सागर वाली पृथ्वी का शासन करते हुए ब्रह्मावर्त्त में वास करते हैं। हे विप्र, वह राजर्षि शतरूपा अपनी रानी के साथ तुम्हारे दर्शन के लिये परसों यहां आयेंगे। हे प्रभो पति की खोज करती हुई, अवस्था और शील गुण से युक्त, अपनीं कन्या को अनुरूप तुम्हें वह दान करेगा।, तेरे हृदय में पत्नी को प्राप्त करने की जो अभिलाषा रही है सो वह राजकन्या तुंम्हें शीघ्र वरण कर लेगी। वह अपने में धारण किये तेरे तेज को नौ कन्याओं के रूप में प्रसव करेगी; उन कन्याओं से ऋषि पुत्र उत्पन्न करेंगे। हे शुद्ध सत्व, तुम मेरी आज्ञा का ठीक पालन करके, मुझमें सब कर्म फल समर्पण कर मुझे ही प्राप्त हो जाओगे। तुम गृहस्थ धर्म से जीवों पर दया करके, तथा संन्यास धर्म से अभय देकर मुझमें जगत् को और अपने को एक रूप हुआ देखोगे। हे महामुने, तेरे द्वारा तेरे क्षेत्र देव हूती में अपनी अंशकला से अवतीर्ण होकर 'तत्त्वसंहिता' का प्रणयन करूंगा। अन्तर्मुख इन्द्रियों द्वारा जिसका दर्शन होता है वह भगवान्—यह कह कर सरस्वती नदी से परि-

वेष्टित विन्दुसर से चले गये। वैकुण्ठ के मार्ग में समस्त सिद्ध-गण उस हरि की स्तुति कर रहे थे, तथा गरुड़ के पंखों से उच्चरित सामवेद की आधारभूत मुख्य ऋचाओं को वे हरि श्रवण कर रहे थे।

मुनि कर्दम के आश्रम में मनु का आगमन

भगवान् विष्णु के प्रस्थान कर जाने पर ऋषि कर्दम विन्दुसर पर बैठे हुए उस काल की प्रतीक्षा में स्थित हो गये। महाराज मनु स्वर्ण निर्मित रथ पर अपनी दुहिता को बैठा-कर स्त्री सहित पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए पूर्व निर्दिष्ट मुनि के उस आश्रम में आ गये। यहाँ शरणागत कर्दम पर अति कृपालु भगवान् के नेत्र से अश्रु बिन्दु गिरीं थीं—इसलिये यह सरस्वती नदी से घिरा हुआ 'विन्दुसर' नामक तीर्थ है, महर्षि-गण से सेवित, आरोग्य वर्द्धक एवं अमृत के समान स्वादु इसका जल है, महर्षि का आश्रम पवित्र देव वृक्ष और लता-जाल से युक्त, सब ऋतुओं के फल और पुष्पों से आढ्य, सुन्दर मृग और पक्षियों के कलरव से परम शोभित था। कहीं मत्त पक्षीगणों का घोष था, कहीं मत्त भ्रमरों का विनोद था, कहीं मत्तमयूर नृत्य कर रहे थे। कदंब, चंपक, अशोक, बकुल, कुंद, मंदार, आम्र, आदि वृक्षों से आश्रम अलंकृत था। हंस, बक, कुरर, जलकुक्कुर, सारस, चक्रगक, चकोर प्रभृति पक्षी सुन्दर कूज रहे थे। इस ही प्रकार हरिण, कुंजर, मर्कट, सिंह, कस्तूरी मृग आदि से वह आश्रम आवृत था। उस तीर्थवर में आदि-राज मनु ने पुत्री के सहित, अग्नि में आहुति देकर आसन पर

बैठे हुए कर्दम मुनि को देखा। मुनि के शरीर से कान्ति प्रकट हो रही थी, भगवान् की स्निग्ध दृष्टि पड़ने के कारण चिर-काल से उग्र तप करने पर भी उनका शरीर अति क्षीण नहीं था। ऋषि का शरीर उन्नत था, उनके नेत्र कमल पत्र के समान उसरण थे, वे जटाधारी और वल्कलवस्त्र पहिने हुए थे, असंस्कृत महामणि के समान मलिन दृष्टिगोचर हो रहे थे, नृदेव मनु ने भी आशीर्वाद से महाराज मनु का अभिनन्दन करके पूजा से सत्कार किया।

मुनि द्वारा राजधर्म का वर्णन करके कुशल प्रश्न

अपनी पूजा को ग्रहण करके मनु-संयत-भाव से बैठे हुए थे; मुनि कर्दम चतुर्भुज भगवान के आदेश को स्मरण करके मधुर वाणी से राजर्षि मनु से वोले—हे देव, आपका पर्यटन सज्जनों की रक्षा के लिए और दुष्टों के बध के लिए हैं, क्योंकि तुम हरि की पालनी शक्ति हो। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, धर्म, यम और वरुण-इन आठ लोकपालों के रूपों को उस-उस कार्य के अवसर पर धारण करते हो, अतः विष्णु रूप तुम्हें मैं नमन करता हूँ। यदि आप जयशील किंणियों से क्रणित रथ पर बैठकर टंकार करते हुए प्रचण्ड धनुष को लेकर पापियों को भय प्रकट करते हुए, बड़ी भारी सेना को साथ में लिये सूर्य के समान भू-मण्डल पर नहीं भ्रमण करें, तब तो सब वर्ण और आश्रमों की आपके द्वारा रचित मर्यादायें दस्युओं से नष्ट कर दी जायें। निरंकुश नृपों से अधर्म बढ़ जाये, तुम्हारे निश्चिन्त हो जाने पर दस्युग्रस्त हुआ यह लोक नष्ट

हो जाए। हे वीर, फिर भी में पूछना चाहता हूँ आप किस निमित्त से यहां आये हैं, वह सब मैं प्रसन्न मन से स्वीकार करूंगा।

मनु द्वारा कन्या समर्पण का प्रस्ताव

समस्त गुण कर्मों के उत्कर्ष का वर्णन सुन सम्राट मनु लज्जित से हो गये, वे मुनि से बोले—ब्रह्मा ने छंदोमय अपने स्वरूप की रक्षा के लिए अपने मुख से तप, विद्या, योग युक्त, संयमी आपने ब्राह्मणों को रचा है। उन ब्राह्मणों की रक्षा के लिए हम क्षत्रियों को भुजाओं से उत्पन्न किया है, उस हरि का हृदय ब्रांह्मण जाति है, क्षत्रिय जाति का अङ्ग है। इस लिए ब्राह्मण और क्षत्रिय आपस में एक दूसरे की रक्षा करते हैं, इस प्रकार वह सर्वात्मक हरि ही की रक्षा कर रहा है। आपके दर्शन से ही मेरे सब संशय छिन्न हो गए हैं, क्योंकि आपने प्रेमपूर्वक रक्षक के धर्म का वर्णन किया, आप असंयत पुरुषों को दुर्दर्श हैं, भाग्य से ही मुझे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है, भाग्य से ही मैंने अपने अपने सिर से आपके मांगलिक चरणरज का स्पर्श किया है। भाग्य से ही आपने अनुशान रूप महान अनुग्रह किया है, खुले हुए कर्ण रन्ध्रों से आपकी सुन्दर वाणी को भाग्य से मैंने श्रवण किया है। हे मुने दुहितृस्नेह से मेरी आत्मा दीन है, कृपया मेरे वचन को श्रवण कीजिये, प्रिय व्रत और उद्धानपाद की बहन, यह मेरी दुहिता वय, शील, गुण आदि से अनुरूप पति को प्राप्त करना चाहती है, जब आपके शील, रूप, वय और गुणों को इसने नारद से सुना,

तभी से यह तुम्हें प्राप्त करने के लिए दृढ़ निश्चय है। हे द्विजाग्र्य, गृहस्थ के सभी कर्मों में सर्वथा तुम्हारे अनुरूप, श्रद्धा पूर्वक मेरे से अर्पित इस कन्या को ग्रहण करो। स्वतः प्राप्त मनोरथ का प्रत्याख्यान (निषेध) संगनिर्मुक्त पुरुष को भी उचित नहीं है, फिर काम रक्त का तो कथन ही क्या है। जो उपस्थित मनोरथ का अनादर करके कृपणता से याचना करता है, उसका यश और भाग अवज्ञा करने के कारण नष्ट हो जाता है।[1] हे विद्वन्, मैंने तुम्हें विवाह के लिए उद्यत सुना था, अतः उपकुर्वाण सार्वधिक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले-आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस कन्या को ग्रहण करें।

वचन पूर्वक ऋषि द्वारा कन्या-ग्रहण

मुनि कर्दम ने कहा—ठीक है. मुझे विवाह की कामना है और यह कन्या अन्य किसी को प्रतिश्रुत (वचन द्वारा दत्त) नहीं हैं। यह हम दोनों की आद्य वैवाहिक विधि अनुरूप ही है। अपनी कान्ति से लक्ष्मी का भी निरादर करती हुई, तुम्हारी इस कन्या का कौन आदर नहीं करेगा। प्रासाद (राजभवन) की छत पर कन्दुक क्रीड़ा करती हुई जिसे देख-कर विम्वावसु गन्धर्व भी विमोहित होकर अपने विमान से गिर पड़ा, उस नारी जाति की भूषण, श्री देवी की उपासना

---

१. "उद्यतस्यहि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते।
अपि निर्मुक्त संगस्य काम रक्तस्य किं पुनः॥
य उद्यतमनादृत्य कोनाशमभियाचते।
क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञयाहत॥
श्रीमद्भागवत ३.२२—१२.१३

से हीन पुरुषों को दर्शन के लिए भी दुर्लभ, उत्तानपाद की बहन मनु की पुत्री को स्वयं प्राप्त होने पर कौन चतुर होगा जो ग्रहण न करे। अतः इस साध्वी को 'जब तक अपत्य की उत्पत्ति हो तब तक 'साहित्य सेवन' के वचन के साथ ग्रहण करूंगा, इसके अनन्तर ज्ञान प्रधान, नारायणोक्त शम दम आदि धर्मों को ही अनुष्ठेय मानता हूँ। तीनों ऋणों से निवृत्त होने के अनन्तर हम जैसों को संन्यास का ही विधान है। वह मुनि इतना ही कहकर मौन हो गये, अन्तः करण में कमल-नाभ हरि का ध्यान करने से उनके मन्दहास से शोभित मुख ने देवाहूति के चित्त को आकर्षित कर लिया। इसके अनन्तर मनु ने अपनी रानी के और पुत्री के निश्चय को जानकर हर्षित हो गुण-गण से आढ्य उन्हें उनके तुल्य कन्या को दे दिया। शत रूपा महाराज्ञी ने विवाह काल से प्रदेय बहुमूल्य भूषण वस्त्र और गृह के उपकरणों को दिया।

मनु का अपनी राजधानी को प्रस्थान

सम्राट् सदृश पति को कन्या देकर चिन्ता रहित हो गये, उत्कण्ठा से दोनों भुजाओं से आलिङ्गन करके नेत्रों के जल से पुत्री की शिखाओं को सींच दिया, उस मुनिवर से अनुमति लेकर स्त्री सहित रथ पर चढकर अनुचरों के साथ अपने पुर को चल दिए। महाराज मनु ने सरस्वती नदी के दोनों तटों पर उपशान्त ऋषियों की सम्पत्ति को देखा। लौटते हुए उस प्रजापति को जानकर ब्रह्मावर्त्त की प्रजा ने गीत, स्तुति और वाद्यों से स्वागत किया। सम्राट् मनु की राजधानी वर्हिष्मती

नाम की पुरी थी, यह सब सम्पत्तियों से पूर्ण थी—यहीं यज्ञ-रूप वाराह के शरीर को कपाने से रोम झड़ गये थे—ये ही नित्य हरित वर्ण के कुश और काश हो गये, ऋषिगण, इन्हीं से राक्षसों का पराभव करके विष्णु का यजन करते हैं। भगवान् मनु ने कुश काशमय वर्हियों को बिछाकर यहाँ यज्ञमय पुरुष का यजन किया था—इसलिए ही इस पुरी का नाम वर्हिष्मतो हुआ। मनु जिस वर्हिष्मती में वास करते थे अब उसके तीनों तापों के नाशक भवन में प्रविष्ट हुए। यहां धर्म आदि के अविरोध से स्त्री और पुत्रों सहित भोगों को भोगते थे। प्रभात में सस्त्रीक सुरगायक उनकी कीर्ति का गायन करते थे—फिर भी वह प्रेमबद्ध हृदय से हरि की ही कथा को सुनते थे। योग माया में निष्णात, भगवत्परायण उस येभ्भव मनु को भोग थोड़ा भी नहीं अन्शित कर सके, विष्णु का श्रवण, ध्यान और कथा करते हुए उसके मनवन्तर का काल गतसार नहीं हुआ। उस राजर्षि मनु ने वासुदेव की कथा प्रसंग से त्रिगुणों से तथा जाग्रत्—आदि तीन अवस्थाओं से न पराभूत हुए न अपने मनवन्तर के इकहत्तर युग व्यतीत कर दिए। शारीरिक, मानसिक, दिव्य (अन्तरिक्ष से उत्पन्न) मानुष्य (शत्रु से प्राप्त) और भौतिक (शीत उष्ण से उत्पन्न) क्लेश हरि के आश्रित पुरुष को कैसे बाधा पहुँचा सकते हैं[1]। आदि राज मनु का वस्तुतः महान् अदभुत चरित था। (शेष पुनः)

---

१. शारीरा मानसा दिव्या वैयासे येच मानुषाः।
भौतिकाश्चकथं क्लेशा बाधन्ते हरि सं श्रयम्॥
श्रीमद्भागवत, ३, २२, ३७

श्री राम कथा का महात्म्य

श्री एच० आर० नन्ना (I. R. A. S. Rtd.)
आनरेरी सैक्रेटरी गीता आश्रम, दिल्ली

विजयादशमी के शुभ पर्व पर कोटि-कोटि भारतीय अपने इष्टदेव श्रीराम का विजयोत्सव मनायेंगे। यह दिवस पुण्य, पाप, देवासुर संग्राम में पुण्य एवं देवों की विजय का दिवस है। भूमि पर जब जब आसुरी माया प्रवृत्त होती है। परम पिता अपनी दैवीयशक्ति से पाप का विनाश करते हैं। इसी लिए भगवान राम की स्तुति में कहा गया है:—

श्रीरामः शरणं समस्त जगतां रामं विना का गती।
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे।
रामे भक्तिरखण्डिता भव तुमे राम त्वमेवाश्रयः॥

त्रिविधि तापों से तप्त संसार को श्री राम ही शरण देने वाले हैं। उनके प्रताप प्रभाव से कलिकाल के सभी पाप दोष नष्ट हो जाते हैं। ऐसे श्री राम को नमस्कार करना चाहिए। श्री राम से काल रूपी भयंकर सर्प भी डरता है। जगत का सब कुछ उनके वश में है। ऐसे श्री राम में मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे राम आप ही मेरे आधार हैं।

वास्तव में कलिकाल के पाप मय संस्कारों का वर्णन ऋषिराज वालमीकि जी ने ठीक ही किया है:—

कलौवेदोक्तमार्गाश्च नश्यन्तीति त्वयोदितः ।
अधर्म निरतानां च यातनाश्च प्रकीर्तिताः ।।
घोरे कलियुगे प्राप्ते वेदमार्गबहिष्कृते ।
पाखण्डत्वं प्रसिद्धं वै सर्वैश्च परिकीर्तितम् ।।

कलियुग में प्रभु प्रदर्शित वेदमार्गों का लोप होकर सर्वत्र मनुष्यों के स्वार्थी स्वभाव से फैलाया हुआ मिथ्याचार फैल जाएगा।

कामार्ता ह्रस्वदेहाश्चलुब्धवा अन्योन्य तत्परः ।
कलौ सर्वे भविष्यन्ति स्वल्पायु बहुपुत्रकाः ।।
स्त्रियः स्वपोषण पराः वेश्याचरण तत्पराः ।
पतिवाक्यमनादृत्य सदान्य गृहतत्पराः ।।
दुःशीलेषु करिष्यन्ति पुरुषेषु सदास्पृहाम् ।
असद्वार्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गना ।।
परुषानृतभाषिन्यो देह संस्कार वर्जिताः ।।

कलियुग के मनुष्य काम वासनाओं में फंसे छोटे कद के होंगे। भगवान का सहारा छोड़कर एक दूसरे को ही लूट कर खाने वाले होंगे। आयु थोड़ी और सन्तान अधिक होगी।

कलियुग की स्त्रियां शरीर सज्जा व पोषण में ही लगी हुई हुई पति की आज्ञा का तिरस्कार करके पराये घरों में ही रुचि लेने लगेंगी। तथा उनका मन सदाचार से हट जाएगा।

उत्तम कुल की स्त्रियां भी पर पुरुषों के पास जाकर ओछी बातें करने लगेंगी। कड़वी व असत्य भाषा बोलेंगी शरीर और आत्मा को पवित्र रखने वाले सद्गुणों व सत् संस्कारों में

उनकी रुचि नहीं होगी। इसलिये इन दोषों से बचने के लिए पतित पावन भगवान राम व भगवती सीता की पुण्य कथा दोषों व कुसंस्कारों से बचाने के लिए अमोघ औषधि का काम देगी। इसीलिए कहा :—

यस्त्वेतच्छृणुयात् भक्त्या राम भक्ति परायणः ।।
समुच्यते महापापैः पुरुष पातंकादिभिः ।

जो मनुष्य श्री रामचन्द्र जी की भक्ति का आश्रय लेकर प्रेमपूर्वक इस कथा का श्रवण करेगा वह बड़े-बड़े पापों व पातकों से भी बच जाएगा।

कथा रामायणस्यापि नित्यं भवति यद् गृहे ।
तद् गृहं तीर्थ रूपंहि दुष्टानां पापनाशनम् ।।

जिस घर में प्रतिदिन रामायण की कथा होती है वह घर ही तीर्थ स्वरूप बन जाता है। वहां पर जाकर तो दुष्ट मनुष्यों के हृदय से भी पाप के संस्कार नष्ट हो जाते हैं।

दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्रामायणोद्भवा ।
कोटि जन्म समुत्थेन पुण्येनैव च लभ्यते ।।

संसार में श्री भगवानराम की कथा दुर्लभ है। अनेक जन्मों के पुण्य संचित हों तब इस पवित्र कथा के सुनने का अवसर प्राप्त होता है।

इसीलिये हमारा धर्म है कि हम इस परम पवित्र ज्ञान से भरपूर तथा कलियुग में फैले पाप के संस्कारों को दूर करने के लिये सदा पाठ करें। तथा श्री राम के पवित्र जीवन तथा माता सीता जी के पुण्य श्लोक चरित्र से शिक्षा ग्रहण कर

अपना लोक परलोक सुधारें। श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में संसार में आये। मनुष्य जीवन में आने वाली सभीं कठिनाइयाँ व संकट उन्हें भी उठाने पड़े। परन्तु धर्म की मर्यादाओं का पालन करते हुए किस प्रकार उन्होंने मनुष्य समाज को शिक्षा दी कि पापों भरे संसार में भी मनुष्य पुण्यात्मा बन कर जीवन बिता सकता है और प्रबल होते हुए भी संसार के पाप दोष उसे नहीं लग सकते। भारत की पवित्र भूमि में मनुष्य के इतने ऊँचे आदर्श उपस्थित कर संसार का मार्ग दर्शन करने वाले श्री राम के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान मिस्टर डडले ग्लास (Dudley Glass) ने अंग्रेजी पत्रिका Aryan path में एक लेख लिखा है जिसमें वह श्री राम को श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए कहता हैं—

A bridge is more than a thing of utility. It can stand for both strength and grace, power and poetry. The theme belongs to legend and history; the structure starts with nature and ends with high engineering skill.

Man is its beneficiary, not only through its physical aid but the symbolism it expresses in the spanning of distances, the joining of opposites, the conquest of difficulties.

In the imaginative East the image appears before the dawn of civilization. Ceylon, so full of legends, sees the chain of sound banks joining Manar with the Indian coast as Adam's Bridge, by which, when expelled from paradise, he crossed to an earthly one crowned by Adam's peak and its miraculous foot print. Still half in the real am on of fancy, these shoals are also claimed while Rama's Bridge, all that is left of a giant causeway built to carry the hearo's army to Ceylon.

भगवान राम की पवित्र वाणी—
भरत को राजधर्म का उपदेश

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी, हमीरपुर

लाखों वर्षों से न केवल भारतवर्ष में अपितु भारतवर्ष से बाहर के कई अन्य देशों में भी रामकथा मानव जीवन के आदर्शों के रूप में जन-जन के हृदय की कहानी बनकर कही सुनी जाती है।

मनुष्य ने सदा अपने ऊपर उच्चकोटि के शासक, प्रभु, मार्ग-दर्शक एवं पूज्यतम की कल्पनाएं की हैं। अनेक धर्मों की कल्पना भी मनुष्य की इस जिज्ञासा का परिणाम है। पतित पावन राम का मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप संसार के सभी कल्याण मार्ग के पथिकों के लिए पथप्रदर्शक रहा है।

अयोध्या की राजगद्दी को पिता के अल्प आदेश पर ठुकरा देने वाले राम अयोध्या निवासियों की सुख सुविधा के लिए बड़े ही चिन्तित रहते थे।

चित्रकूट पर्वत पर पुण्यात्मा भरत का राम से सम्मेलन हुआ और बन्धु वियोग पीड़ित भरत को राजा मानकर जो प्रश्न भगवान राम ने भरत जी से पूछे हैं उन्हें पढ़कर कोई भी व्यक्ति राम भगवान के राजा स्वरूप से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता है।

जटा व चीर वस्त्र धारण किए भरत को भगवान कठि-

नाई से पहचान सके और उनके दुर्बल शरीर को देख कर राम भगवान ने अनेक प्रश्न किए महाराज कहते हैं—

कच्चित् सौम्य न ते राज्यं भ्रष्टं बालस्य शाश्वतम् ।।

हे भरत अभी तुम बालक हो। इसलिए बताओ कि अनुभव हीनता के कारण दीर्घ परम्परा से चली आ रही राज्य व्यवस्थायें अयोध्या में नष्ट तो नहीं हो गई ?

स कच्चित् ब्राह्मणो विद्वान् धर्म नित्योमहाद्युति ।
इक्ष्वाकूणामुपाध्यायो यथावत् तात् पूज्यते ।।

इक्ष्वाकु वंश के इस राज्य की रक्षा परम विद्वान ब्रह्मवेत्ता और धर्म की व्यवस्था को जानने एवं उनका पालन करने व कराने वाले महातेजस्वी आचार्य वशिष्ठ जी कर रहे थे। तुम उनका सत्कार तो करते हो।

निश्चय ही विद्वानों का यथावत् आदर सम्मान न करने से राज्य परम्परा व मर्यादाओं का लोप हो जाता है।

कच्चिद् विनय सम्पन्नः कुलपुत्रो बहुश्रुतः ।
अनुसूयरनुद्दष्टा सत्कृतस्ते पुरोहितः ।।

उत्तम कुल में उत्पन्न विनय एवं शील की मूर्ति, शास्त्रों का जिन्होंने गहन अध्ययन किया है और जो किसी में दोष ही नही देखते अपितु प्रत्येक में सद्‌गुणों का विकास करते रहते हैं ऐसे सत्य धर्म के परिपालक पुरोहित जी का तुम सत्कार करते हो।

ऐसे पुरोहित ही प्रजा में धर्म की मर्यादाओं एवं व्यवस्था की स्थापना करते हैं।

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञा मतिमानृजुः ।
हुतं च होष्यमारणं च काले वेदयते सदा ।।

पवित्र हवन विधियों के जानकार बुद्धिमान और सरल स्वभाव वाले शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को तुमने अग्निहोत्र यज्ञ कार्यों के लिए नियुक्त किया है । क्या वे ठीक समय पर आ आकर तुम्हें सूचित करते रहते हैं कि इस समय अग्नि में आहुति दे दी गई और अब अमुक समय में हवन करना है ।

कच्चिद् देवान् पितृन् भृत्यान् गुरुन् पितृ समावपि ।
बृद्धाश्च तात वैद्याँश्च ब्राह्मणाश्चाभिमन्यसे ।।

हे तात् । क्या तुम देवताओं, पितरों, सेवकों, गुरुजनों, पिता के समान आदरणीय बृद्धजनों, वैद्यों व विद्वानों का ठीक ठीक सम्मान करते हो ?

कच्चिदात्म समाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियः ।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात् मन्त्रिणः ।।

हे भाई ! राज्य की रक्षा एवं उसको ठीक-ठीक तरह चलाने के लिए तुमने अपने ही समान् शूरवीर, शास्त्रों का ज्ञान रखने वाले संयमी, जितेन्द्रिय, अच्छे कुल वाले तथा इशारे मात्र से मन की वात समझ सकने वाले सुयोग्य मंत्री नियत कर लिये हैं ।

मंत्रो विजय मूलं हि राज्ञाँ भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रि मधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः ।।

हे रघुकुल की रक्षा करने वाले ! अच्छे और उत्तम परामर्श से ही राजा अपने कार्यों में विजय प्राप्त करते हैं । और

वह कार्य सफल भी तब होते हैं जबकि नीति शास्त्रों के पूर्ण जानकार मंत्रि शिरोमणि अमात्य सफलता प्राप्त होने तक उन्हें गुप्त रखते हैं।

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित् काले ऽवबुध्यसे।
कच्चिच्चापर रात्रेषु चिन्तयस्यर्थ नैपुणम्॥

हे भरत! कहीं तुम्हें समय-कुसमय नींद ही तो नहीं सताती रहती है। अपने ठीक समय पर जाग तो जाते हो। और अपने अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिए रात्रि के पिछले पहर अर्थाद् ब्राह्म मुहूर्त में बैठकर उपायों पर विचार तो करते हो न?

राज्य के कल्याण के लिये यदि कोई गुप्त योजना हो तो वह केवल दो चार कानों तक ही गुप्त रह सकती है अतः भगवान राम भरत से पूछते हैं।

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सहः।
कच्चित् ते मंत्रितो मंत्रो राष्ट्रं न परिधावति॥

किसी भी गूढ़ गम्भीर विषय पर केवल मनमानी अपनी ही सम्मति का तो भरोसा नही करते हो यह भी दोष है। राजा को मनमानी कभी नहीं करनी चाहिये, अथवा कहीं लोक रंजन के रोग के वशीभूत राष्ट्र रक्षा की गुप्त योजनाओं को बहुत अधिक लोगों के साथ बैठकर तो विचार नहीं करते हो। कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त योजनाएं कार्यरूप में परिणत होने से पहले ही फूट कर शत्रु पक्ष के राज्यों तक फैल जाती हों। यह बड़ी भूल की

बात है। राजनीति विशारद् भगवान राम के प्रश्न ही राष्ट्र रक्षा के मूल मन्त्र हैं।

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम्।
क्षिप्रमारम्भसे कर्म न दीर्घयसि राघव॥

हे रघुवंशी भरत! जो थोड़े परिश्रम और थोड़े साधनों से अधिक फल व सफलता प्रदान करें ऐसे कार्यों को विचार निश्चय कर लेने के बाद उन्हें प्रारम्भ करने में विलम्ब तो नहीं करते हो। शीघ्र ऐसे कार्य प्रारम्भ कर देने चाहिए।

कच्चिन्नु सुकृतान्येव कृतरूपाणि वा पुनः।
विदुस्ते सर्वकार्याणि न कर्त्तव्यानि पार्थिवाः॥

तुम्हारे सभी काम सफल एवं पूरे हो जाने पर ही दूसरों को मालूम होने चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने से पहले ही विरोधी जान ले और विघ्न बाधा उपस्थित करने लगें।

कच्चिन्नतर्कैर्युक्त्यावाये चाप्यपरिकीर्तिताः।
त्वया वा तव वामात्यैर्बुध्यते तात् मन्त्रितम्॥

हे भाई तुम्हारे निश्चित किए हुये विचार तुम्हारे या तुम्हारे मंत्रियों द्वारा चाहे प्रकट न भी किए जाएं परन्तु कहीं ऐसा तो नहीं होता कि विरोधी दूसरे लोग तर्क और युक्तियों के द्वारा ही तो नहीं जान लेते हैं। और तुम किसी धोके में हानि उठाओ।

कच्चित् सहस्त्रैमूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितोह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत्॥

क्या हजारों मूर्खों के बदले एक विद्वान को ही तुम अपने पास रखना पसन्द करते हो ? क्योंकि जब तुम्हारे ऊपर कोई संकट आयेगा तो वे हजारों मूर्ख तुम्हारी सहायता नहीं कर पाएंगे अपितु एक विद्वान किसी उत्तम उपाय से तुम्हारी रक्षा अवश्य कर लेगा ।

सहस्रान्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः ।
अथवाथयुतान्येवनास्तितेषु सहायता ।।

यदि कोई राजा हजार अथवा दस हजार मूर्खों को भी अपने पास रख ले तो भी अवसर आने पर उनके द्वारा कोई अच्छी सहायता राजा को प्राप्त नहीं हो सकती है ।

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरोदक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महती श्रियम् ।।

उस मूर्ख समूह के बदले में यदि एक भी मन्त्री ऐसा हो जो मेधावी शूरवीर चतुर एवं नीति शास्त्रों का जानकार हो तो वह राजा और राज पुत्रों को बहुत बड़ी सफलताएं व सिद्धियां प्राप्त करा सकता है ।

प्रत्येक कार्यकर्ता को योग्यता के आधार पर ही काम पर लगाया जाए । अतः भगवान कहते है :—

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः ।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तातयोजितः ।।

हे भाई ! क्या तुमने मुख्य व्यक्तियों को महत्वपूर्ण कार्यों में, मध्यम श्रेणी के मनुष्यों को मध्यम प्रकार के कार्यों में और छोटे दर्जे के लोगों को छोटे दर्जे के कामों में लगाया है न ?

अमात्यानुपाधातीतान् पितृ पैतामहान्शुचीन् ।
श्रेष्ठान्छ्रेष्ठेषु कच्चित् त्वं नियोजयसिकर्मसु ।।

तुम्हारे मन्त्री इन गुणों से युक्त तो हैं जिन्हें तुम उत्तम कार्यों में लगाते हो। उनका पहला गुण यह हो कि सदा छल रहित हों किसी से कोई रिश्वत या प्रलोभन स्वीकार करके राज-मर्यादा एवं प्रतिष्ठा को धोखा न दे दें। उनके आचार विचार, व्यवहार की परीक्षा उनके बाप-दादों के समय से करनी चाहिए और वे अन्दर बाहर से पूरी तरह शुद्ध पवित्र होने चाहिए।

कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृशमुद्वे जिताः प्रजाः ।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयी सुत ।।

हे कैकेयी के कुमार ! तुम्हारे राज्य के प्रजा जन कठोर दण्ड पाने के कारण क्रुद्ध व असन्तुष्ट होकर तुम्हारे मन्त्रियों का तिरस्कार तो नहीं करते।

कच्चित् त्वां नावजानन्ति याजकाः पतितं यथा ।
उग्र प्रतिग्रहीतारं कामयानमिव स्त्रियः ।।

यज्ञ कराने वाला पवित्र यजमान जैसे धर्म से पतित यजमान को छोड़ देता है। जैसे धर्मपरायण स्त्री कामाचारी पुरुषों की निन्दा कर देती है। उसी प्रकार सरल प्रजा उस राजा का अनादर कर देती है जो कठोरता पूर्वक अधिक कर लेता है।

उपाय कुशलं वैद्यं भृत्य संदूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्य कामं च यो न हन्ति स हन्यते ।।

जो साम, दाम उपायों के प्रयोग में कुशल, राजनीति शास्त्र का विद्वान एवं विरोधी पक्ष के विश्वासी सेवकों की तोड़-फोड़ में लगा हुआ हो, शूरवीर तथा राजा के राज्य को हड़प लेने की इच्छा रखने वाला हो, ऐसी दुष्ट इच्छा रखने वालों को जो राजा समाप्त नहीं कर लेता वह उन्हीं के हाथों से समय आने पर मारा जाता है।

राजा किसे सेनापति बनावे

कच्चिद्धृष्टश्चशूरश्चधृतिमान् मतिमान् शुचि।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापति कृतः ॥

हे भरत ! क्या तुमने सदा सन्तुष्ट रहने वाले, शूरवीर, धैर्यवान्, बुद्धिमान, पवित्र, कुलीन और अपने सद्गुणों में अनुराग रखने वाले युद्ध के कार्यों में निपुण को ही अपना सेनापति बनाया है ?

बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्ध विशारदाः।
दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥

हे भरत ! क्या तुम्हारे प्रधान-प्रधान योद्धा सेनापति युद्ध विद्या में कुशल और पराक्रमी तो हैं न ? क्या तुमने उनकी शूरवीरता की परीक्षा कर ली है ? क्या तुम उनका ठीक प्रकार सत्कार व सम्मान करते हो ?

कच्चिद्बलस्यभक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न बिलम्बसे ॥

सैनिकों को जो वेतन तुमने निश्चित किया है क्या समय पर वह वेतन तुम उन्हें दे देते हो ? उनका वेतन बांटने में देरी तो नहीं लगाते हो ?

कालातिक्रमणेह्येव भक्त वेतनयोर्भृताः ।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्तिसोऽनर्थः सुमहान् कृतः ॥

समय चुका कर वेतन और भत्ते देने पर सैनिक अपने स्वामी पर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं और केवल इसी कमी के कारण बड़ा भारी अनर्थ भी हो जाता है ।

कच्चित् सर्वेनुरक्तांस्त्वां कुलपुत्राः प्रधानतः ।
कच्चित् प्राणांस्तवार्थेषु संत्यजन्ति समाहितः ॥

क्या उत्तम कुल में उत्पन्न मन्त्री आदि समस्त प्रधान अधिकारी तुमसे प्रेम करते हैं ? क्या वे तुम्हारे लिए एकचित्त होकर प्राणों का त्याग करने को उद्यत रहते हैं ? राज्य अधिकारियों का राजा के प्रति प्रेम ही उसकी उन्नति व रक्षा का प्रधान साधन है ।

कच्चिज्जानपदो विद्वान् दक्षिणः प्रतिभानवान् ।
यथोक्तवादी दूतस्ते कृतो भरत पण्डितः ॥

हे भरत ! तुमने जिसे राजदूत के पद पर नियुक्त किया है वह पुरुष अपने ही देश का निवासी, विद्वान् कार्यकुशल, प्रतिभाशाली और जैसा अदेश दिया जाए वैसी ही बात दूसरों को कहने वाला और सत्असत् का विवेक रखने वाला तो है न ?

राष्ट्र का गुप्तचर विभाग कितना सतर्क व सावधान होना चाहिए :—

कंच्चिदष्टादशान्येपु स्वपक्षे दश पञ्च च ।
त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सि तीर्थानि चारकैः ॥

क्या तुम विरोधी पक्ष के अठारह और अपने पक्ष के पंद्रह तीर्थों की तीन-तीन अज्ञात गुप्तचरों द्वारा देख-भाल या जांच-पड़ताल करते रहते हो।

विरोधी पक्ष के १८ तीर्थ यह है—(१) मन्त्री, (२) पुरोहित, (३) युवराज, (४) सेनापति, (५) द्वारपाल, (६) अन्तःपुर का अध्यक्ष, (७) कारागाराध्यक्ष, (८) कोषाध्यक्ष, (९) अर्थसचिव, (१०) प्रदेष्टा (पहरेदारों को काम बताने वाला), (११) नगराध्यक्ष, (१२) कार्य निर्माणकर्त्ता, (१३) धर्माध्यक्ष, (१४) समाध्यक्ष, (१५) दण्डपाल, (१६) दुर्गपाल, (१७) राष्ट्रसीमा पाल और (१८) वन-रक्षक।

(1) Chief minister, (2) Incharge of religius rites, (3) Prince, (4) Commander in-chief, (5) incharge main fort, (6) incharge House hold, (7) incharge prison House, (8) Chief accountent,(9) Finence minister,(10) Incharge watch & wards, (11) Chief of police, (12) Minister for works & Housing, (13) Minister of Religios affairs,(14) Speaker of peoples parliament, (15) Minister of law & Justice. (16) Minister for protectionforces, (17) Minister for Boundery (18) Minister of forest,

राजा का कार्य है कि प्रारम्भ के तीन को (मुख्यमन्त्री, पुरोहित व राजकुमार) छोड़कर शेष पर अपने राज्यों में सदा उनकी गुप्त देख-रेख रखे।

कच्चिद् व्यपास्तानहितान् प्रतियांतांश्चसर्वदा।
दुर्बलाननवज्ञाय वर्तसे रिपुसूदन ॥

हे रिपुसूदन ! जिन विपक्षियों को तुमने अपने राज्य से निकाल दिया था वे यदि लौटकर आते हैं तो तुम उन्हें दुर्बल समझकर उनकी उपेक्षा तो नहीं करते ?

उनसे सावधान रहना राजा का कर्त्तव्य है।

कच्चिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणां स्तातसेवसे ।
अनर्थकुशला ह्येते बालाः पण्डितमानिनः ।।

हे तात ! तुम कभी नास्तिक ब्राह्मणों का संग तो नहीं करते हो ? क्योंकि वे मनुष्य की बुद्धि को परमार्थ से विचलित करने में कुशल होते हैं और वास्तव में अज्ञानी होते हुए भी अपने आपको वहुत बड़ा पण्डित मानते हैं।

धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुद्धाः ।
बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्तिते ।।

उनका ज्ञान, धर्म शास्त्रों के विरुद्ध होने के कारण दूषित होता है। और वे प्राणभूत प्रधान धर्म शास्त्रों के होते हुये भी तार्किक बुद्धि का आश्रय लेकर व्यर्थ बकवाद किया करते हैं।

वीरैरध्युषितां पूर्वमस्माकं तात पूर्वकैः ।
सत्यनामां दृढ़द्वारां हस्तश्वरथ संकुलाम् ।।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा।
जितेन्द्रियैर्महोत्साहैर्वृ तामार्यैः सहस्रशः ।।
प्रसादैर्विविधाकारैर्वृतां वैद्यजनाकुलाम् ।
कच्चित् समुदितां स्फीतामयोध्यां परिरक्षसे ।।

भगवान् अपनी जन्मभूमि की रचना की प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

हे तात ! अयोध्या हमारे वीर पूर्वजों की निवास भूमि है वैसे ही गुणों वाली है। सब ओर से उसके द्वार सुदृढ़ बनाये गए हैं। उसमें हाथी' घोड़े और उत्तम रथ भरे पड़े हैं।

हजारों की संख्या में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए उस नगरी में सदा निवास करते हैं। वे सबके सब उच्चकोटि के उद्देश्यों वाले उत्साही जितेन्द्रिय और श्रेष्ठ गुणों वाले हैं। नाना प्रकार के राजभवन और मंदिर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगरी बहुत भारी संख्या में विद्वानों से भरी पड़ी है। ऐसी महान् अभ्युदयशील और समृद्धिशालिनी नगरी अयोध्या की तुम भली भांति रक्षा तो करते हो न ?

कच्चिच्चैत्यैशतैर्जुष्टःसुनिविष्टजनाकुलः।
दैवस्थानैः प्रपाभिश्च तटाकैश्चोपशोभित ॥
प्रहृष्ट नरनारीकः समाजोत्सव शोभितः।
सुकृष्ट सीमा पशुमान् हिंसाभिरभिर्वजितः॥
अदेव मातृकोरम्यः श्वापदै परिर्वजितः।
परित्यक्तोभयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः॥
विवर्जितो नरैः पापैर्मम पूर्वैः सुरक्षितः।
कच्चिज्जनपदः स्फीतः सुखं वसति राघव ॥

हे रघुनन्दन भारत ! जहाँ नाना प्रकार के अश्व मेघ आदि महायज्ञों के लिए चुने हुये बहुत से यज्ञ स्थान (अनुष्ठान स्थल) शोभा पाते हैं। जिसमें प्रतिष्ठित मनुष्य भारी संख्या में निवास करते हैं। अनेक-अनेक स्थान बड़े तालाब छोटे-

छोटे तालाब इस नगरी की शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ के स्त्री पुरुष सदा प्रसन्न रहते हैं। यह नगरी अनेक प्रकार के सामाजिक उत्सवों के कारण सदा शोभा-सम्पन्न रहती है। यहां खेती वाड़ी के काम में आने योग्य पशु बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। उन पशुओं की कोई हिंसा नहीं कर सकता है। खेती के लिये वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता है (अर्थात् राज्य की ओर से नहरों आदि की पूर्ण व्यवस्था है। यह वहुत ही सुन्दर वनी है। हिंसक पशु वहां नहीं रह सकते हैं। यहाँ किसी प्रकार का भय नहीं हैं। इस राज्य में नाना प्रकार की कीमती पदार्थों की खानें हैं जो शोभा बढ़ाती हैं। जहाँ पापी मनुष्य का सर्वथा अभाव है। हमारे पूर्वजों ने सदा इस राज्य की भली भांति रक्षा की है। वह अपना कौशल देश धन धान्य से सम्पन्न और सुखपूर्वक वसा हुआ है न ?

कच्चित् ते दयिताः सर्वेकृषिगोरक्षजीविनः।
वार्तायां संश्रितस्तातलोकोऽयं सुखमेधते ॥

हे तात ! कृषि और गौरक्षा से अपनी आजीविका चलाने वाले सभी वैश्य तुम्हारे प्रीति पात्र तो हैं न ? क्योंकि कृषि और व्यापार आदि में संलग्न रहने पर ही यह लोक सुखी और उन्नतिशील होता है।

तेषां गुप्ति परि हारैः कच्चित् ते भरण कृतम्।
रक्ष्याहि राज्ञाधर्मेण सर्वे विषयवासिनः ॥

उन वैश्यों को अपने अभीष्ट की प्राप्ति कराकर और उन के हानिकारक बाधाओं को दूर करके तुम सब लोगों का

भरण पोषण तो करते हो न ? क्योंकि राजा को अपने राज्य में निवास करने वाले सब लोगों का धर्मानुसार पालन करना चाहिये ।

कच्चित् स्त्रियः सान्त्वयसे कच्चित् तास्ते सुरक्षिताः ।
कच्चिन्नश्रद्दधास्यांसां कच्चिद् गुह्य न भाषसे ।।

क्या तुम अपनी स्त्रियों को संतुष्ट रखते हो ? क्या वे तुम्हारे द्वारा भली प्रकार सुरक्षित रहती है ? क्या तुम उन पर सीमा से अधिक विश्वास तो नहीं करते ? कहीं उन्हें अपनी गुप्त बातें तो नहीं बताते हो ?

(कारण कि स्त्रियों में वाचालता के कारण गुप्त बातें फूट कर हानि पहुँचाती हैं ।

कच्चिनाग वनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः ।
कच्चिन्न गणिकाश्वानांकुञ्जराणां च तृप्यसि ।।

जहां हाथी उत्पन्न होते हैं वे जंगल तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हैं न ? दूध देने वाली गौवें तुम्हारे पास अधिक संख्या में हैं न ? क्या रथिनिओ घोड़ों और हाथियों आदि पशु धन की ओर से तुम उदास वृत्ति तो नहीं बना बैठे ? क्योंकि इस पर राज्य की स्मृद्धि का आधार है ।

कच्चिदद्दर्शयसे नित्यं मानुषाणांविभूषितम् ।
उत्थायोत्थाय पूर्वाह्ले राजपुत्रं महापथे ।।

हे राजकुमार क्या तुम प्रतिदिन पूर्वाह्नकाल में वस्त्राभूषणो से विभूषित होकर प्रधान सड़क पर जा जा कर नगर वासी मनुष्यों को दर्शन देते हो। ऐसा करने से

राजा का मान सम्मान सुरक्षित रहता है। प्रजा की राजा में प्रीति बढ़ती है।

कच्चिन्न सर्वे कर्मान्ताः प्रत्यक्षास्तेऽविशङ्कया।
सर्वेवापुनरुत्सृष्टा मध्यमेवात्र कारणम् ॥

काम-काज में लगे हुये सभी मनुष्य निडर होकर तुम्हारे सामने तो नहीं आते? अथवा वे सब सदा तुम से दूर तो नहीं रहते? क्योंकि कर्मचारियों के विषय में मध्यम स्थिति का अवलम्बन करना ही अर्थ सिद्धि का कारण होता है।

कच्चिद् दुर्गाणिसर्वाणि धनधान्यायुधोदकैं।
यन्त्रैश्च प्रति पूर्णानि तथाशिल्पि धनुर्धरैः ॥

क्या तुम्हारे सभी दुर्ग (किले) धन धान्य, अस्त्र, शस्त्र, यन्त्र (मशीनें) कारीगर और अस्त्र शस्त्र धारी सैनिकों से भरे रहते हैं।

आयस्ते विपुलः कच्चित् कच्चिदल्प तरोव्ययः।
अपात्रेषु न ते कच्चित् कोषो गच्छतिराघवः ॥

हे रघुनन्दन! क्या तुम्हारी आय अधिक और व्यय वहुत कम है? (जैसा कि राज्य कोष को बढ़ाने के लिए जरूरी है) तुम्हारे खजाने का धन अपात्रों के हाथ में तो नहीं चला जाता है?

देवतार्थे च पित्रर्थे ब्राह्मभ्यांगतेषु च।
योधेषु मित्र वर्गेषु कच्चिद् गच्छति ते व्यय ॥

तुम्हारा धन देवताओं, पितरों, ब्राह्मणों अभ्यागतों, योद्धाओं और मित्रों के लिये ही खर्च होता है न?

कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्माक्षारितश्चाप कर्मणा ।
अदृष्टः शास्त्र कुशलैर्न लोभाद्‌बध्यते शुचिः ।।

कहीं ऐसा तो नहीं होता कि कोई मनुष्य किसी श्रेष्ठ, निर्दोष और शुद्धात्मा पुरुष पर भी दोष लगा दे तथा शास्त्र-ज्ञान में कुशल विद्वानों द्वारा उसके विषय में विचार कराये बिना ही लोभ वश उसे आर्थिक दण्ड दे दिया जाता हो ?

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्ट सकारणः ।
कच्चिन्न मुच्यते चोरो धन लोभान्नरर्षभ ।।

हे नर श्रेष्ठ ! जो चोरी में पकड़ा गया हो, जिसे किसी ने चोरी करते समय देखा । जांच पड़ताल करने पर जिसके चोर होने का प्रमाण भी मिल गया हो, तथा जिसके विरुद्ध (चोरी का माल बरामद होने आदि) और भी बहुत से प्रमाण हों ऐसे चोर को भी तुम्हारे राज्य में धन के लालच (रिश्वत) के कारण छोड़ तो नहीं दिया जाता ?

व्यसने कच्चिदाढ्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।
अर्थं विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ।।

हे रघुकुलभूषण ! यदि धनवान् और निर्धन में कोई विवाद छिड़ा हो और वह राज्य के न्यायालय में निर्णय के लिये आया हो तो तुम्हारे विद्वान् मंत्रीगण धन, आदि के लोभ (रिश्वत घूस खोरी के) छोड़कर उस मामले पर विचार करते हैं न ?

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि राघवः ।
तानि पुत्र पशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ।।

हे रघुनन्दन ! निरपराध होने पर भी जिन्हें मिथ्या दोष लगाकर दंड दिया जाता है उन मनुष्यों की ग्राँखों से जो ग्रांसू गिरते हैं वे पक्षपात पूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र ग्रौर पशुग्रों का नाश कर डालते हैं।

कच्चिद् बृद्धांश्च वैद्यान् मुख्यांश्च राघव।
दानेन मनसा वाचा त्रिभिरेतैंबुभूषसे।

हे राघव ! क्या तुम वृद्ध पुरुष, बालकों ग्रौर प्रधान वैद्यों का ग्रान्तरिक ग्रनुराग, मधुर वचन ग्रौर धन दान इन तीनों के द्वारा सम्मान करते हो ? जो कि धर्म है।

कच्चिद् गुरु ंश्च वृद्धांश्चं तापसान् देवतातिथीन्।
चैत्यांश्च सर्वान् सिद्धार्थान् ब्राह्मणांश्चनमस्यसि।

गुरु जनों वृद्धों तपस्विग्रों देवताग्रों ग्रतिथियों, चैत्य वृक्षों ग्रौर समस्त पूर्णकाम ब्राह्मणों को नमस्कार करते हो न ?

कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः।
उभौवा प्रतिलोभेन कामेन न विधायसे।

तुम ग्रर्थ के द्वारा धर्म को ग्रथवा घर्म के द्वारा ग्रर्थ को हानि तो नहीं पहुँचाते ? ग्रथवा ग्रासक्ति ग्रौर लोभरूप काम के द्वारा धर्म ग्रौर ग्रर्थ दोनों में बाधा तो नहीं ग्राने देते ?

कच्चिदर्थचं कामं च धर्मं च जयतांवर।
विभज्य काले कालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे॥

विजयी वीरों में श्रेष्ठ, समयोचित कर्त्तव्य के ज्ञाता तथा दूसरों को वर देने में समर्थ भरत ! क्या तुम समय का विभाग करके धर्म, ग्रर्थ ग्रौर काम का योग्य समय में सेवन करते हो ?

कच्चित् ते ब्राह्मणः शर्म सर्वशास्त्रार्थ कोविदाः ।
आशंसन्ते महा प्राज्ञ पौर जानपदैः सह ॥

हे महा प्राज्ञ ! सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले ब्राह्मण पुर वासी और जनपद वासी मनुष्यों के साथ तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं न ?

राजा के दोषों का भगवान वर्णन करते हैं :—

नास्तिक्यमनृतं क्रोधं प्रमादं दीर्घ सूत्रताम् ।
अदर्शनं ज्ञानवतामालस्यं पञ्च वृत्तिताम् ॥
एक चिन्तनमर्थानामनर्थज्ञैश्च मंन्त्रणम् ।
निश्चितामनारम्भं मन्त्रस्या परिरक्षणम् ॥
मङ्गलांद्य प्रयोगंच प्रत्युथानं च सर्वतः ।
कच्चित् त्वं वर्ज यस्येतान् राज दोषांश्चतुर्दश ॥

नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषों का संग न करना, आलस्य, नेत्र आदि इन्द्रियों के वशीभूत होना, राज्यकार्यों के विषय में अपने सिवा किसी से कोई विचार ही न करना (मनमानी चलाना) प्रयोजन को न समझने वाले और उल्टी ही सलाह देने वाले मूर्ख अयोग्य व्यक्तिओं से सलाह करना, निश्चित् किए हुए कार्यों का शीघ्र प्रारम्भ ही न करना (दुबिधा में ही रहना) गुप्त मंत्रणाओं को सुरक्षित न रख कर उन्हें हर एक से कहते फिरना। धार्मिक माङ्गलिक कार्यों का सेवन अनुष्ठान ही न करना तथा अहंकार व गर्व में आकर एक ही साथ सब शत्रुओं पर बिना विचारे चढ़ाई कर देना। ये राजा के चौदह दोष हैं।

हे तात् तुम इन दोषों से अपने आपको बचाए रहते हो न ?

दश पंञ्च चतुर्वर्गान् सप्तवर्गं च तत्वतः ।
अष्टवर्गं त्रिवर्गं च विद्यास्तिस्त्रश्च राघव ।।
इन्द्रियाणाँ जयं वुद्ध्वा षाड्गुण्यं दैव मानुषम् ।
कृत्यं विंशतिवर्गं च तथा प्रकृति मण्डलम् ।।
यात्रा दण्ड विधानं च द्वियोनीसंधिविग्रहै ।
कच्चिचदेतान् महाप्राज्ञ यथावदनुमन्यसे ।।

हे महाप्राज्ञ ! क्या संसार के प्रथम राजा व राजविद्या विशारद महाराज महर्षि मनु द्वारा बताए हुए इस गुह्य ज्ञान का तुम ठीक-ठीक प्रयोग करते हो ? (१) दशवर्ग (आखेट, जुआ, दिन में सोना, दूसरों की निन्दा, स्त्री में आसक्ति मद्यपान, नाचना, गाना बजाना और व्यर्थ में घूमना) (२) पंञ्चवर्ग (जल दुर्ग, पर्वत दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, ईरिण दुर्ग, और धन्वदुर्ग ये पाच दुर्ग पञ्च वर्ग कहलाते हैं) (३) चतुर्वर्ग (साम, दान, दण्ड और भेद नीति वर्ग को चतुवर्ग कहते हैं) (४) सप्त वर्ग (राजा, मंत्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्र वर्ग ये सात अङ्ग हैं) (५) अष्ट वर्ग (चुगली, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, दोष दर्शन, अर्थ दूषण, कठोर वाणी, कठोर दण्ड यह आठ दोष है) (६) त्रिवर्ग (धर्म अर्थ व काम यह तीन वर्ग हैं । (७) तीन विद्या (वेद की तीनों विद्याऐं) (८) छः गुण (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव, समाश्रय यह छः गुण हैं) दैवीय मानुषीवाधाऐं, राजा के नीति पूर्ण कार्य राज्य के वीस प्रकार के विधिविधान जो महाराज मनु

ने बताए हैं। भूगोल का अच्छी प्रकार ज्ञान, यात्राओं के साधन दण्ड विधान, संधि व विग्रह के रहस्य। हे भरत क्या तुम इन महत्वपूर्ण विषयों पर पूरा ध्यान देते हो।

मन्त्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेववा।
कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मंन्त्रं मन्त्रयसे बुध, ॥

हे विद्वन् ! क्या तुम नीति शास्त्र की आज्ञानुसार चार या तीन विद्वान मंत्रियों के साथ सबको इकट्ठा करके अथवा सबसे अलग-अलग मिलकर सलाह करते हो ?

कच्चित् ते सफला वेदाः कच्चित् ते सफलाः क्रियाः।
कच्चित् ते सफलादाराः कच्चित् ते सफलं श्रुतम् ॥

क्या तुम वेदों की आज्ञानुसार काम करके उन्हें सफल बनाते हो ? क्या तुम्हारी क्रियाएं सफल (उद्देश्य की सिद्धि करने वाली) हैं ? क्या तुम्हारो स्त्रियां भी सफल (सन्तान व धर्म वाली) है। क्या तुम्हारा शास्त्र ज्ञान भी विनय आदि गुणों का उत्पादक होकर ही सफल हुआ है।

कच्चिदेषैव ते बुद्धिर्यथोक्ता ममराघव।
आयुष्या च यशस्या च धर्म कामार्थ संहिता ॥
यां वृत्तिं वर्तते तातो यांचनः प्रपितामहः।
तों वृत्तिं वर्तसे कच्चिद् याच सत्पथगाशुभा ॥
कच्चित् स्वादुकृतं भोज्यमेकोनाश्नासिराघव।
कच्चिदाशंसमानेभ्यो मित्रेभ्यः सम्प्रयच्छसि ॥

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा
महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम्।
अवाप्य कृत्स्नां वसुधा यथाव
दितश्च्युतः स्वर्ग मुपैतिविद्वान्।

हे रघुनन्दन् भरत ! मैंने जो कुछ कहा है तुम्हारी बुद्धि का भी ऐसा ही निश्चय है न ? क्योंकि विचार, आयु और यश को बढ़ाने वाला, तथा धर्म-अर्थ काम की सिद्धि कराने वाला यह ज्ञान है। हमारे पिता जी ने जिस वृत्ति का आश्रय लिया, हमारे प्रपितामहों ने जिस धर्म का आचरण किया सत्पुरुष भी जिसका सेवन करते हैं और जो कल्याण का मूल है। उसीका तुम पालन करते हो न ?

हे रघुनन्दन स्वादिष्ट भोजन तुम अकेले ही तो नहीं खा जाते हो। उस भोजन की आशा रखने वाले अपने मित्रों को भी देते हो न ?

इस प्रकार धर्म के अनुसार दण्ड धारण करने वाला विद्वान राजा प्रजाओं का अच्छी तरह पालन करके समस्त पृथ्वी को धर्म पूर्वक अपने अधिकार में कर लेता है। तथा देह त्याग कर पुनः स्वर्ग में जाता है।

श्री मद्वाल्मीकीय आदि काव्ये अयोध्या काण्डे शततमः सर्गः।

सीता जी के प्रति

सीते !
जगत् जननी !
पुनीते !
अर्चना में मैं तुम्हारी,
क्या सुमन समर्पित करूँ ?
जब गा चुके सम्मान में तव गीत कितने—
भक्ति भावों से भरे......
वे मातृ मन्दिर के पुजारी,
कर रहे जो युग-युगान्तर से सदा ही
वन्दना निशि दिन तुम्हारी ।
देवि ! बोलो मैं अकिञ्चन,
आज भीगी भावना के...
कुछ सुमन अम्लान ले...
उपहार चरणों में चढ़ाने के...
लिए कैसे बढ़ूं ?
सीते । जगद्जननी,
पुनीते ! अर्चना में मैं तुम्हारी
क्या सुमन अर्पित करूँ ?

(२)

कैसा सरल गाम्भीर्य वह,
औ स्नेह का सागर अतल;

हिमगिरि सदृश कैसी विमल
चारित्र्य की दृढ़ता अटल !
तुम राजपुत्री, नृप वधु,
औ राजपत्नी कोमला;
खेली सदा पद-पद्म से
शुभ शारदा, कमला, कला,
फिर भी विरत अभिमान,
नारी जातिहित वरदान सी
तुम सरल हृदया' धर्मनिष्ठा धीर धीरा
कल्प लतिका सी अमरफलदायिका
हे सौम्य, मर्यादा-पुरुष-उत्तम-प्रवर
उन धीर-वीर-गंभीर राजा राम की रानी-प्रिया ।
सीते ! जगत् जननी······।।

(३)

सुख में पलीं—
फूलीं सदा, ऐश्वर्य के मृदु दोल में;
पर कहां सीखा था, कहो—
हंस हंस दुखों से खेलना ?
रहकर भयानक विपिन में—
कर सुखों की अवहेलना ।
हम जगत की मृदुकामनाओं से निरत,
अधिकार लिप्सा के मनोरम जाल में...
बिसरा रहीं कर्त्तव्य अपना उच्चतम !

अब क्या हमारे तिमिर-हृदयों में कभी
आदर्श पावन की तुम्हारे दिव्यतम
कुछ स्वर्ण किरणें जग उठेंगी प्रात-सी ?
मन की मलिनता त्यागकर,
संघर्षजय भव-पंथ में···
हंस वीरता से सब सुखों का सामना
हम कर सकेंगी क्या कभी,
गरिमामयी ?
करुणा करो आशीष दो—
कलुषित हृदय में···
शील शुद्धाचार का सम्मान हो।
सीते जगत् जननी !······

(४)

गाऊँ तुम्हारे ज्ञान क्या—
असमर्थ हूँ, अज्ञान हूँ;
तुम हृदय-मन्दिर में बसो,
जीवन सफल हो जाएगा;
और भक्ति-रसमय गीत युग-युग
मूक मानस गायगा।
तुम हो महा महिमामयी अति क्षुद्र मैं—
कैसे बहूँ देवत्व के तव सिन्धु में,
हे पुण्य-प्रतिमे !
फिर तुम्हारी वन्दना कैसे करूँ ?

घट में जलधि कैसे भरूँ ?
पाकर तुम्हें……
है गौरवान्वित
देश भारत की अमल अवनी अहो !
सीते !
जगत् जननी,
पुनीते
अर्चना में मैं तुम्हारी,
क्या सुमन अर्पित करूँ ?

—सुश्री कुमारी कान्ति चौहान

पुण्यात्मा भरत का धर्मात्मा स्वरूप

श्री खेमपालसिंह रघुवंशी, विनयनगर नई दिल्ली

मानव जीवन कर्त्तव्यों के भार से लदा पड़ा है। मनुष्य योगी हो या गृहस्थी, विद्वान् हो या अविद्वान् प्रत्येक अवस्था में अपने कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रह कर ही वह जीवन में सफलता व सिद्धि प्राप्त करता है। इसी सत्य को गीता जी में भगवान श्री कृष्ण ने बड़े सुन्दर शब्दों में कहा है—

स्वे स्वे कर्मेअभिरतः संसिद्धि लभते नरः,

कैकेयी ने भगवान राम को बनवास का आदेश दिला कर अपने पुत्र भरत को गद्दी दिलाने का जो संकल्प किया उससे कर्त्तव्य परायण तपस्वी धर्मात्मा भरत को बहुत दुख हुआ।

राम बनवास के बाद जब भरत अपनी ननिहाल से लौटे तो उन्हें अपनी अनुपस्थिति में होने वाली इस घटना पर घोर पश्चाताप हुआ।

श्री राम जी की माता कौशल्या ने जब भरत से कहा कि :—

इदं ते राज्य कामस्य राज्यं प्राप्तमकण्टकम्।
सम्प्राप्तं बत कैकेय्या शीघ्रं क्रूरेण कर्मणा. ॥

माता कौशल्या जी को महाराज दशरथ के परलोक गमन का दुख पुत्र वियोग से भी अधिक था अतः उन्होंने भरत को कहा—

बेटा ! तुम राज्य चाहते थे न, सो यह निष्कण्टक राज्य तुम्हें प्राप्त हो गया किन्तु खेद इसी बात का है कि रानी कैकेयी ने जल्दी के कारण यह राज्य बड़े क्रूर कर्म के द्वारा प्राप्त किया।

यह सुनकर पवित्र हृदय भरत को वड़ी पीड़ा हुई। जैसे उनके घाव को किसी ने सुई चुभो दी हो। उस समय श्री भरत ने माता कौशल्या के सामने कुछ शपथें खाई हैं जिनको पढ़कर श्रीराम कालीन मानव जीवन के पवित्र व धार्मिक आदर्शों का पता चलता है। भरत कहते हैं —

कृतशास्त्रानुगाबुद्धिर्माभूततस्य कदाचन ।
सत्य संधा सतां श्रेष्ठो यस्यार्योऽनुमते गताः ।।

हे माता ! सत्पुरुषों में श्रेष्ठ, सत्य प्रतिज्ञ आर्य श्री राम जिसकी इच्छा से बन में गए हों उस पापी की बुद्धि कभी गुरु से सीखे हुए, शास्त्रों में वताए गये मार्ग का पालन करने वाली न वने।

प्रैष्य पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।
हन्त पादेन गाः सुप्तायस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी अनुमति से मेरे सहोदर भाई बन गये हो वह अत्यन्त पापियों—हीन जातियों का सेवक बनने को बाध्य हो। सूर्य की ओर मुख करके मल मूत्र का त्याग करे और सोई हुई गौओं को लातों से मारे। अर्थात् इन पाप कर्मों का उसे फल मिले।

कारयित्वा महत् कर्मभर्ताभृत्यमनर्थकम् ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योनुमते गतः ।।

जिसकी सम्मति से आर्य राम बन को गए हैं उसको वही पाप लगे जो सेवक से सारी काम करा कर उसे समुचित वेतन न देने वाले स्वामी को लगता है।

परिपालयमानस्यराज्ञो भूतानि पुत्रवत्।
ततस्तुद्रुह्यतां पापं यस्यार्योनुमतेगतः ।।

जिसके कहने से आर्य श्रीराम को वन में भेजा गया है उसको वही पाप लगे जो समस्त प्राणियों को पुत्र के समान पालन करने वाले राजा से द्रोह करने वाले को लगता है।

बलि षड्भागमुद्धृत्यनृपस्यारक्षितुः प्रजाः।
अधर्मोयोऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योनुमते गतः ।।

जिसने आर्य राम को वन भेजा है उसे उसी पाप का फल प्राप्त हो जो प्रजा से उसकी आय का छठा भाग लेकर भी प्रजा वर्ग की रक्षा न करने वाले राजा को लगता है।

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रेवैयज्ञ दक्षिणाम्।
तां चापलतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को वन जाना पड़ा उसे वही पाप लगे जो यज्ञ में कष्ट सहनेवाले ऋत्विजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा करके पीछे इनकार कर देने वाले यजमान को लगता है।

हस्त्यश्वरथ सम्बाधे युद्धेशस्त्र समाकुले।
मास्म कार्षीत् सतांधर्म यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

हाथी, घोड़े और रथों से भरे एवं अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से व्याप्त संग्राम में सत्पुरुषों के धर्म का पा[illegible] न करने वाले

योद्धाओं को जो पाप लगता है वही पाप उस मनुष्य को लगे जिसकी सम्मति से आर्य राम बन को गए हैं।

उपदिष्ट सुसूक्ष्मार्थं शास्त्रं यत्नेन धीमता ।
स नाशयतु दुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से आर्य राम को बनवास मिला है उस दुष्टात्मा बुद्धिमान को गुरु द्वारा यत्नपूर्वक प्राप्त शास्त्र के सूक्ष्म विषय का ज्ञान भी भूल जाए। भगवान राम के व्यक्तित्व के प्रति भरत का प्रेम कितना महान् है वे कहते हैं :—

माचेतं व्यूढबाह्वंसं चन्द्रभास्कर तेजसम् ।
द्राक्षीद्राज्यस्थमासीनं यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से श्रीराम को वनवास मिला हो वह चंद्र सूर्य के समान तेजस्वी तथा विशाल भुजाओं व कन्धों से सुशोभित श्रीरामचन्द्र जी को राज्य सिंहासन पर विराजमान न देख सके—अर्थात् श्रीराम के दर्शनों से ही वञ्चित रह जावे ।

पायसं कृसरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।
गुरुश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से आर्य राम वनवास गए उसे वह पाप लगे जो निर्दयी मनुष्य को खीर, उत्तम भोजन देवों, पितरों एवं भगवान को निवेदन किए बिना खाने से लगता है।

गाश्च स्पृशतु पादेन गुरुन् परिवदेत च ।
मित्रेद्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसके परामर्श से राम बन गए हों उसे वह पाप लगे जो पापी मनुष्य को गौओं का शरीर पैर से छूने पर, गुरुजनों

की निन्दा से तथा मित्र के प्रति अत्यन्त द्रोह करने से लगता है।

विश्वासात् कथितं किंचित परिवादं मिथः क्वचित्।
विवृणोतु सदुष्टात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसके परामर्श से राम को बनवास मिला हो उसे वह पाप लगे जो दुष्टात्मा को विश्वासघाती बनने पर लगता है।

अकर्ता चाकृतज्ञश्च व्यक्तात्मा निरपत्रपः।
लोके भवतु विद्विष्टो यस्यार्योऽतुमते गतः ।।

रामचन्द्र जी को वन जाने का विचार करने वाले को वह पाप लगे जो मनुष्य का उपकार न करने वाले, कृतघ्न, सत्पुरुषों द्वारा निकाल दिए गए निर्लज्ज और जगत में सबके द्वेष के पात्र व्यक्ति को लगता है।

पुत्रैर्दासैश्च भृत्यैश्च स्वगृहे परिवारितः।
स एको मृष्ट मश्नातु यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सम्मति से आर्य राम वन में गए हों वह अपने घर में पुत्रों, दासों और भृत्यों से घिरा रह कर भी अकेले ही मिष्ठान्न भोजन करने के पाप का फल भोगे।

अप्राप्य सद्दशान् नाराननपत्यः प्रमीयतान्।
अनवाप्य क्रियां धर्म्यां यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी अनुमति से आर्य राम का बनवास हुआ हो वह अपने योग्य धर्म पत्नी को न पाकर अग्निहोत्र आदि धार्मिक कर्मों का अनुष्ठान किए बिना सन्तान हीन अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो।

माऽऽत्मनः संतति द्राक्षीत् स्वेषुदारेषुदुःखितः ।
आयुः समग्रमप्राप्य यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

जिसकी सम्मति से आर्य श्रेष्ठ श्री राम बन गए हों वह सदा दुःखी रहकर अपनी धर्म-पत्नी से होने वाली सन्तान का मुंह न देखे तथा सम्पूर्ण आयु का उपभोग किए बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो।

राजस्त्री बालबृद्धानां बधेयत्पापमुच्यते ।
भृत्य त्यागे च यत्पापं तत पापं प्रतिपद्यताम् ॥

राजा, स्त्री, बालक और वृद्धों का वध करने तथा भृत्यों को त्याग देने में जो पाप होता है वही पाप उसे लगे जिसकी सलाह से राम को बनवास हुआ।

लाक्षया मधुमांसेन लोहेन च विषेण च ।
सदैव विभृयाद् भृत्यान् यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

जिसकी सम्मति से श्री राम को वनवास हुआ हो उसे वह पाप लगे जो सदा लोह, मधु, मांस, लोहा और विष आदि निषिद्ध वस्तुओं को बेच कर कमाए हुये धन से अपना भरण-पोषण के योग्य कुटुम्बी जनों का पालन करने वाले को लगता है।

संग्रामे समुपोढे च शत्रुपक्ष भयंकरे ।
पलायमानोबध्येत् यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

जिसकी सम्मति से आर्य राम बन गए हों वह शत्रु पक्ष को भय देने वाले युद्ध को प्राप्त होने पर उसमें पीठ दिखाकर मारा जाए।

कपाल पाणिः पृथिवीमटता चीर संवृतः ।
भिक्षमाणो यथोन्मत्तोयस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से श्री राम वन जाने पर विवश हुए हों वह फटे, पुराने, मैले-कुचैले वस्त्रों से अपने आपको ढक कर हाथ में खप्पर ले भीख मांगता हुआ पागल की भांति पृथ्वी पर घूमता फिरे ।

मद्यप्रसक्तो भवतुस्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः ।
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से श्रीराम जी को वनवास मिला हो वह काम, क्रोध के वश में होकर सदा ही मद्यपान स्त्री समागम और जुआ जैसे पापों में लगा रहे ।

मास्यधर्मे मनोभूयादधर्मं स निषेधताम् ।
अपात्रवर्षी भवतु यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी सलाह से आर्य श्रीराम बनवास गए हों उसका मन धर्म में कभी न लगे व अधर्म में लगे रहने, अधर्म का ही सेवन करने और कुपात्रों को दान देने के पाप का भागी बने ।

सचितान्यस्य वित्तानिविविधानि सहस्रशः ।
दस्युभिर्विप्रलुप्यन्तां यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसके परामर्श से श्री राम वन गए हों उसका सहस्रों की संख्या में इकट्ठा किया हुआ धन वैभव लुटेरे लूट ले जाएं ।

उभे संध्येशयानस्ययत् पापं परिकल्पते ।
तच्च पापं भवेत्तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

संध्या उपासना करने के दोनों समय प्रातः-सायं जो सोता रहता है उसे जो पाप लगता है वही पाप श्री राम को बन जाने की इच्छा रखने वाले को लगे।

यदग्निदायके पापं यत्पापं गुरुतल्पगे।
मित्रद्रोहे च यत्पापं तत्पापं प्रतिपद्यताम्॥

आग लगाने वाले गुरु पत्नी गामी और मित्र द्रोह का उसे पाप लगे।

देवतानां पितृणां च मातापित्रौस्तथैव।
मास्मकार्षीत् ससुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः॥

जिमकी सलाह से श्री राम जी को वन जाना पड़ा है उसे वही पाप लगे जो देवताओं, पितरों और माता-पिता की सेवा न करने वालों को लगता है।

सतां लोकात् सतां कीर्त्याः सज्जुष्टात् कर्मणस्तथा।
भ्रष्यतुक्षिप्रमद्यैव यस्यार्योऽनुमते गतः॥

जिसकी सम्मति राम जी के वनवास भेजने की हो वह आज ही सत्पुरुषों के लोक से, उनकी कीर्ति और उनके पवित्र कार्यों से वंचित हो जाए।

अपास्य मातृशुश्रूषामनर्थेसोऽवतिष्ठिताम्।
दीर्घ बाहुर्महाबक्षा यस्यार्योऽनुमते गतः॥

विशाल बाहु और वक्षस्थल वाले राम जिसकी सलाह से बन गए हों वह माता की सेवा छोड़कर अनर्थ पथगामी बन जाएं।

बहुभृत्योदरिद्रश्चज्वररोगसमन्वितः।
समायात् सततं क्लेषं यस्यार्योऽनुमते गतः॥

श्रीराम जी के वनवास के लिए जिसका परामर्श हो वह दरिद्र बन जाये। उसके पास परिवार अधिक होनेपर भी उनके भरण-पोषण का साधन न हो, सदा ज्वर रोग पीड़ित एवं क्लेष में पड़ा रहे।

आशामांशसमानां दीनानामूर्ध्वंचक्षुषाम् ।
अर्थिनां वितथां कुर्याद्यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

जिसकी अनुमति आर्य राम के वनवास की हो उसका ऐसा जीवन उन दरिद्र भिखारियों का सा बन जाए जो याचकों की तरफ मुँह उठाए किसी से भीख की निष्फल आशा रखते हैं।

मायया रमतां नित्यं पुरुषः पिशुचोऽशुचिः ।
राज्ञोभीतस्तधर्मात्मा यस्यार्योऽनुमते गतः ।।

पापात्मा पुरुष पर निन्दक अपवित्र एवं राज से सदा भयभीत रहे जिसकी यह सम्मति हो।

श्री भरत की पाप-पुण्य के सम्बन्ध में इतनी ऊँची कल्पना होने के कारण पुण्यात्मा भरत भाई के वियोग में व्याकुल हो गए।

माता कौशल्या ने भरत को अत्यन्त व्याकुल देखकर और निष्पाप निश्छल हृदय पाकर कहा :—

दिष्ट्या न चलितोधर्मादात्मस्य सहलक्षणः ।
वत्स सत्य प्रतिज्ञोहि सतां लोकानवाप्स्यसिः ।।

हे पुत्र ! सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा हृदय शुभ लक्षणों से सम्पन्न है और धर्म के मार्ग से विचलित नहीं

हुआ । तुम सत्य-प्रतिज्ञ हो अतः तुम्हें सत्पुरुषों के लोक प्राप्त होंगे ।

महात्मा भरत के इतने महान् पवित्र और राज्य से उदासीन भावों को देखकर ही भरत की निज माता कैकेयी ने कहा था :—

जन कर जननी भी जान न पाई जिसको ।
उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ।।

धन्य हो ऐसे पवित्रात्मा जिनके कारण मनुष्य समाज पुण्य व धर्म के मार्गों पर चलता हुआ सफल जीवन बिताता है ।

जय-तुलसी

भारत के कविराजन में अति ऊंचो है नाम सदा तुलसी को,
जासु प्रताप-दिवाकर के लखे औरन को जब लागत फीको।
जुगुनू और तरैयन की कहा, तेज ह्वै जात मन्द ससी को,
धाक सुनै रिपु खाक मिलै, छूटि परे उत्साह जसी को ॥१॥
सूर फिरै निज राह टटोरत, देव की चातुरी हू बिसरी है,
भूल बिहारी रह्यो छरछन्दन, भूषण वीरता छोरि धरी है।
विज्ञपनो गयो केसव को मतिराम की माधुरी फीकी परी है,
का गिनती हरिचन्द की चन्द, कबीर हू की नहीं बात
खरी है ॥२॥

हिन्दू हिन्दी हिन्द नाम जब लौं जगराजै,
तब लौ तुलसीदास सुजस महि मण्डल गाजै।
सत कविता सतकार जहां लौ यहि संसारा,
ऋषिवर को परताप तहां लगि टरै न टारा।
तुम शैक्सपिअर, होमर तथा दांते हू सो हो अधिक।
जय जय तुलसी, जय जत नमः भगति रस के रसिक ॥

—मिश्र-बन्धु

★

माता सीता : नारी की परिपूर्णता की प्रतीक

श्रीमती धनराज किशोरी कौल

आत्मा को गीता जी में अमर कहा गया है। आत्मा की शक्तियों और विभूतियों का विषद् वर्णन गीता जी करती हैं। अकेले शरीर के रूप में आत्मा एकाङ्गी और अपूर्ण माना जाता है। इसीलिए भगवान ने गृहस्थ जीवन को श्रेष्ठ बताया है। इसी जीवन में रहकर दो आत्माएँ इस संसार की रचना में भाग लेते हैं। संसार के सभी सन्त, महन्त, महापुरुष इसी पवित्र नियम के अनुसार उत्पन्न हुए हैं।

जगद्‌जननी सीता जी ने संसार के सामने इस परम पवित्र आदर्श को अति श्रेष्ठ और सर्वोच्च सिद्ध कर दिखाया।

रावण इस नियम के विरीत ज़ीवन व्यतीत करता था। उसके रनिवास में नारी का शरीर एक पशु के जीवन से अधिक मूल्य नहीं रखता था। इसीलिए श्रीरामायण जी में रावण के रनिवास का बड़ा वीभत्स वर्णन है जिसे पढ़कर किसी भी नारी को रोमांच हो सकता है।

परन्तु भगवान राम और जगद्‌जननी सीताजी की जुगल जोड़ी उस अंधेरे में एक प्रकाश स्तम्भ (Light house) का काम देती है। यही कारण है कि कोटि-कोटि जन इस जुगल जोड़ी को अपना इष्ट देव मानकर पूजन करते हैं। नारी के

लिए पतित व्रत धर्म की श्रेष्ठता यह सीता जी के जीवनोद्देश्य का मूल मंत्र है।

अयोध्या के राजमहलों के सुखों को तिनके के समान लात मार कर जब श्रीराम वन गमन के कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ हुए तो उन्हें सीता जी को देखकर बनवास के कष्ट स्मरण हो उठे। उन्होंने वन जीवन की कठोर कहानी सीता जी को सुनाई। उनका विचार था कि सीता जी इन कष्टों को सुनकर विचलित हो जाएँगी और राजमहल का ही जीवन स्वीकार कर लेंगी। परन्तु उसका प्रभाव उल्टा ही हुआ। सीता जी कहने लगी—

प्राण नाथ ! करुणायतन ! सुन्दर सुखद सुजान।
तुम बिन रघुकुल कुमुदबिधु सुरपुर नरक समान॥

हे करुणा की मूर्ति ! प्राणनाथ ! हे सुन्दर सुख देने वाले सुजान ! हे रघुकुल तिलक ! आपने मुझे सुख दुःख की परीक्षा में क्यों डाल दिया। क्या आपको यह ज्ञात नहीं कि मैं आप की धर्म पत्नी हूँ मेरे लिये आपके अभाव में स्वर्गलोक भी नरक लोक के समान प्रतीत होता है।

मात पिता भगिनी सुत भाई, प्रिय परिवार सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई, सुत सुन्दर सुशील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ ! नेह अरु नाते, पिय बिनु तियहिं तरनिते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू, पति विहीन सब शोक समाजू॥

हे नाथ मनुष्य के साथ मनुष्यों के अनेक प्रकार के संबंध निश्चित हैं। वे सभी अपने अपने स्थान पर सच्चे सम्बन्ध

हैं। परन्तु पति पत्नी का सम्बन्ध एक अत्यन्त दैवीय पवित्र सम्बन्ध हैं। माता, पिता, बहन, बेटा, भाई यह सारा प्यारा परिवार का समूल है। सास, ससुर, गुरु सभी बड़े सज्जन और सहायक होते हैं। बेटा सुन्दर और सुशील हो तो वह भी सुख देने वाला होता है। परन्तु जहाँ तक इन सव सम्बन्धों की प्रेम स्वरूपता का उपयोग है; यह सारे सम्बन्ध एक पति के बिना पत्नी को तो जलाने वाली अग्नि से भी अधिक जलाने वाले वन जाते हैं। पति ही की उपस्थिति में प्रेम व सम्बन्धों की मधुर धार बहती है उसकी अनुपस्थिति में वे ही सब कुछ विपरीत दिखाई देने लग जाता है।

तनु धनु धामु धरणि पुर राजू, पति विहीन सब शोक समाजू ।।
भोग रोग सम भूषणभारू, जम जातना सरसि संसारू ।।

शरीर, धन, निवास स्थान, भूमि, नगर और राज, सारा लोक संसार पति के बिना शोभा रहित बन जाता है। भोग के पदार्थों से रोग उत्पन्न होने लगते हैं। शरीर पर पहने हुये भूषण बोझ बन जाते हैं। इससे सुन्दर दिखने वाला संसार यमराज का सा दारुण दुःख बन जाता है।

प्राणनाथ तुम बिनु जगु मांही, मो कहँ सुखद कंतहु कछु नाहीं।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसे ही नाथ पुरुष बिनु नारी।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे, सरद बदन विधु बदन निहारे।

हे प्राण नाथ ! आपके न होने से तो मुझे संसार में कहीं सुख का लेषमात्र भी दिखाई नहीं देता।

हे प्रभु ! जैसे विना ग्रात्मा के शरीर होता है, जैसे विना जल के नदी होती है वैसे पती के बिना पत्नी का जीवन निरर्थक और निस्सार बन जाता है।

ग्राप ने बनवास के वन जीवन की जो कहानी कही परन्तु मेरे हृदय से तो पूछिए कि—

खगमृग परिजन नगरु वनु, वलकल विमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुखमूल ।।

उड़ते हुए पंक्षी, चरते हुए हिरन पराए शहरों के निवासी ग्रपरिचित लोग, पेड़ों की छालों से बनाए हुए कपड़े, नदियों के निर्जन किनारे, यह सभी ग्रापके साथ रहने पर स्वर्ग लोक का ग्रानन्द प्रदान करने वाले हो जाएंगे।

बनदेवी बनदेव उदारा, करिहहिं सासु समुर सम प्यारा ।

बन की देवियां ग्रौर बन के देवलोग उदार हृदय होकर मेरे साथ सास ससुर की भाँति प्रेम करने लगेंगे।

कुस किसलय साथरी सुहाई, प्रभुसंग मंजु मनोज तुराई ।।
कंदमूल फल ग्रमिग्र ग्रहारू, ग्रवध सोंह सत सरिस पहारू ।।
छिनु-छिनु प्रभुपद कमल विलोकी रहिहुं मुदितदिवस जिमिकोकी
वन दुख नाथ कहे बहुतेरे, भय विषाद परिताप घनेरे ।।

कंदमूल फल का ग्राहार ग्रमृत स्वरूप बन जाएगा

जब जब मैं ग्रपने प्रभु के कमल चरणों का दर्शन करूंगी इस प्रकार की प्रसन्नता मुझे प्राप्त होगी जिस प्रकार कि चकवा चकवी के प्रेम-सम्मेलन में प्रसन्नता दिखाई देती है।

आपने बनवास के जो बहुत से दुखों का मेरे सन्मुख वर्णन किया है वह सभी मिलकर :

प्रभु वियोग लवलेस समाना, सब मिलि होंहि न कृपा निधाना

आपके वियोग में तो हे कृपा निधान। बहुत ही छोटे और हल्के दुख हैं। परन्तु आपका वियोग तो मेरे लिए साक्षात् कालस्वरूप ही बन जाएगा मैं उसे कैसे सहन कर सकूंगी।

अस जिय जानि सुजान शिरोमणि,लेइअ संगमोंहि छाड़िअ जन।
बिनती बहुत करों का स्वामी, करुनामय उर अन्तर्यामी ।।

हे स्वामी ! मैं आपसे अब क्या प्रार्थना करूं। स्वयं ही अपने हृदय में विचार करिए कि संसार में नारी की अपने प्राणनाथ के बिना क्या-क्या दशा हो जाती है। अतएव मुझे छोड़कर बन जाने की कल्पना भी मत कीजिए।

को प्रभु संग मोंहि चितवन हारा।
सिंह बुधहिं जिमि ससक निहारा ।।
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहिं उचित तप मो कहं भोगू ।।

आपके साथ रहते हुए भला कौन मेरी आँख उठाकर देख सकता है। क्या कोई गीदड़ सिंह के ओर आँख उठा सकता है। यह विचार आपके मन में कैसे आ गया कि आप बन जाने योग्य हैं और मैं सुकुमारी हूँ। आप तो तपस्या करें और मैं सांसारिक भोग विलास में जीवन व्यतीत करूँ। यह कहां की मर्यादा और धर्म है।

भगवती सीता के पवित्र आदर्शों पर भारतीय नारी का ग्रहस्थ जीवन आज तक अखण्ड निष्कंटक एवं सुख शान्तिमय रूप में चल रहा है। इन्हीं आदर्शों का पालन करते हुए भारत की हजारों ललनाओं ने अपने धर्म का पालन करते हुए घोर तप किये हैं और इसीलिये उनका नाम आजतक इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ है। कीट पतंगों की भाँति यूं तो अनेक जीवन भोग विलास में रचे पचे अपना जीवन नष्ट कर बैठे परन्तु उन्हें कोई जानता भी नहीं।

माता सीता नारी के अमर और दिव्य जीवन की अलौकिक ज्योति के रूप में आज भी हमारा मार्ग दर्शन कर रही हैं।

यह माता सीता के आदर्श चरित्र का ही चमत्कार है कि महादुराचारी अत्याचारी रावण जो नारी जाति को कलंकित करने के लिए ही पैदा हुआ था वह भी माता को अपने प्रलोभनों भय व कुचक्रों में नहीं फंसा सका।

एक बार रावण ने अशोक वाटिका में बैठी सीता जी को धोखा देना चाहा। रावण बहुरूपिया था। सीता जी के हृदय में चौबीसों घंटे अपने इष्टदेव श्री राम की ही मूर्ति विराजती थी। वे हृदय से श्रीराम की सदा पूजा करती रहती थीं। उनको संसार में श्री राम के बिना कुछ सुहाता ही नहीं था।

रावण ने विचार किया मैं क्यों न एक बार राम का ही रूप बनाकर मैं सीता जी के पास जाऊँ ताकि धोखे से सीता जी मुझे पसन्द करने लगें। रावण ने ऐसा किया परन्तु श्री

राम का रूप बनाने के बाद जो दशा रावण की हुई। वह देखकर रावण तो स्वयं ही लज्जित हो गया।

हुआ ऐसा कि रावण अपने स्वरूप में सदा दुराचारी भावों का चिंतन करता रहता था। परन्तु श्री राम का रूप बनाते ही संसार की प्रत्थेक स्त्री माता के रूप में दिखने लग गई और श्री भगबती जानकी जी को भी वह माता के रूप में देखने लग गया।

भगवती सीता व भगवान राम के इस दिव्य स्वरूप को कौन अभागा है जो अपने मन मंदिर में बैठकर पूजन न करेगा।

"इति ते ज्ञान माख्यातं गुह्यादगुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥"[1]

श्री जीवन जालपुरी, नई दिल्ली

एक दिन प्रातः समय मैं गुरु देव अनन्त श्री विभूषित परम् पूजनीय श्री स्वामी हरिहर जी महाराज के चरण कमलों में बैठा था। अन्य दूसरे भक्तजन भी उपस्थित थे। यथावत गींता के विषय पर चर्चा हो रही थी। उचित अवसर पा, एक भक्त ने प्रश्न किया कि सभी महात्माओं का मत है कि प्रातः काल भगवान की वन्दना या हरिनाम स्मरण शय्या पर ही—पृथ्वी पर पैर धरने से पूर्व कर लेना चाहिये—इसका क्या रहस्य है ?

प्रश्न वस्तुतः अति विचित्र था। हरिनाम स्मरण तो मेरा अनुमान है कि सभी करते हैं। स्वयं मैं बहुधा शय्या पर ही भगवद्नाम का चिन्तन करता हूँ। परन्तु ऐसा क्यों किया जाता है या ऐसा न करने में क्या हानि हो सकती है, इस विषय पर कभी विचार ही न किया था। इस प्रश्न की व्याख्या सुनने के लिए हम सभी उत्सुक हो गए।

यह तो एक वस्तुस्थिति है कि गुरुदेव की वाणी पर सर-

---

१. अर्थात्—इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिए कहा है। इस रहस्य युक्त ज्ञान को संपूर्णता से अच्छी प्रकार विचार करके फिर तू जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा ही कर।

स्वती का वास है। जो अति-सुन्दर व्याख्या श्री मुखारविन्द से हुई उसे लिपिबद्ध करने में तुच्छ बुद्धि असमर्थ है। परन्तु उन पाठक गणों के विचार से जो दूर होने के कारण विवश हैं और श्री महाराज की वाणी का ध्यान कर, यह अमृत पान करना चाहेंगे, मैं कुछ लिखने का प्रयास करता हूँ।

श्री महाराज ने बताया कि तीनों गुण अर्थात् सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण हमें सदैव जकड़े रहते हैं। समय-समय पर अनेकानेक कारणों के प्रभाव से ये बढ़ते या घटते रहते हैं। किसी एक समय पर एक गुण हमारे अन्दर दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रबल रहता है। इसी प्रधान गुण के आधार पर हमारे व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। सतोगुण प्रधान होने पर हम शांति को प्राप्त होते हैं। रजोगुण के कारण हमारे अंदर चंचलता की वृद्धि होती है। इसी प्रकार तमोगुण के बढ़ जाने से हमारे अन्दर मल, कफ़ और आलस्य बढ़ जाता है जिसके कारण हमारी काया ही भ्रष्ट हो जाती है। जिस समय हम निद्रा को प्राप्त होते हैं निः सन्देह तमोगुण हमारी काया को हर लेता है और इसे भ्रष्ट कर देता है। यह एक वस्तुस्थिति है कि भ्रष्ट वस्तु के सम्पर्क से हर पवित्र वस्तु पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मानसिक प्रभाव तौ और भी तीव्र होता है।

पृथ्वी ने हमें जन्म दिया—हमारे पालन पोषण की व्यवस्था की—अपनी छाती से अन्न उपजा कर हमारे आहार का सामान किया। इसी कारण इसे माता और पवित्र माना गया है। यदि हम निद्रा त्यागते समय भ्रष्ट रूप में ही अपना पैर

धरा की छाती पर रख देंगे तो उस पवित्र माता के हृदय से हमारे प्रति धिक्कार ही निकलेगी जिससे हमारी कीर्ति व यश को धक्का अवश्य मिलेगा।

घड़े के जल से जलाशय का जल अधिक पवित्र है और कूप का जल इन दोनों से भी उत्तम। इन सबकी अपेक्षा गंगा जल कहीं ज्यादा निर्मल और पवित्र है। एकमात्र वस्तु जो गंगा जल से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ है वह है—हरिनाम ! इसे जिह्वा पर लाते ही शरीर या मन का पवित्र हो जाना ही क्या यहाँ तक कहा गया है कि यदि मरते समय मनुष्य हरि का नाम ले ले तो वह समस्त पापों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

प्रातः समय निद्रा त्याग देने पर शय्या पर पड़े पड़े पवित्र होने का उपाय ही क्या है। जल से पवित्र होना सम्भव नहीं केवल हरिनाम स्मरण ही एकमात्र उपाय है। जिससे हम तमो गुण को सम्पूर्ण रूप से हटाकर सतोगुण को प्राप्त हो सकते हैं। सतोगुण को अंगीकार कर लेने के पश्चात् जब हम पृथ्वी पर पैर धरेंगे पृथ्वी भी इसे अपना अहोभाग्य समझेगी और आशीर्वाद देगी जो जगत में हमारी कीर्ति व यश को बढ़ाकर हमारे लिए कल्याणकारक होगी।

(बतलाने) से था हमें सरोकार।
अब मान न मान है तू मुख्तार॥

★

गीता के श्रीकृष्ण

आचार्य सुरेन्द्र नारायण मिश्र एम० ए०

यह निर्विवाद सत्य है कि विश्व की अन्य भूमि की अपेक्षा भारत की उर्वराभूमि सदा से महात्माओं या महापुरुषों को प्रसव करने में अग्रणी रही है। तभी तो देवाधिदेव भगवान् भी यहां बार-बार विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होते रहे। उन्हीं में भगवान् कृष्ण भी हैं। यही नहीं भगवान् श्रीकृष्ण अवतारों में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न हैं। 'कृष्णस्तु भगवान्' स्वयं कहकर व्यास ने भी इसकी पुष्टि की है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम को छोड़ कोई भी महापुरुष इनकी तुलना में नहीं आ सकता। किसी-किसी विषय में राम से भी आगे हैं। भगवान् शब्द के प्राचीन वाङ्मय या विचार के अनुसार इस प्रकार अर्थ होते हैं जों पूर्णतया श्रीकृष्ण में लागू भी होते हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव, षराणां भगवती रणा ।।१।।
उत्पत्तिं च विपत्तिं च, भूतानामगतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च, सभगवानितीरितः।।"

जो सारे ऐश्वर्य अणिमा, महिमा, लघिमा आदि अष्ट सिद्धियों धृति, क्षमा, दम, अस्तेय आदि दशविधि धर्म यश लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य का भाजन होने के साथ ही संसार की सृष्टि-प्रलय आकस्मिक गति, विद्या (परा तथा अपरा) अविद्या

(माया या अज्ञान) का ज्ञाता हो उसे भगवान् कहते हैं। गीता के विषय में उद्घोष है।

"एतदेवाक्षरं व्रह्म, एतदेवाक्षरं परम्।
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा, यो यदिच्छति तस्य तत्॥"

ओङ्कार अक्षर व्रह्म है, इसी को जानकर जो जिस वस्तु की इच्छा रखता है प्राप्त कर सकता है, भगवान् श्रीकृष्ण अक्षर व्रह्म के मूर्त रूप हैं। पूर्ण अवतार है, "यदा यदाहि धर्मस्य" के अनुसार भू-भार नष्ट कर श्रुति-स्मृति सम्मेंत आर्य पथ को प्रशस्त करने, आये थे जिससे राष्ट्र की रक्षा हो सके।

भागवत्कार व्यास के समान ही गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव ने भी श्रीकृष्ण की गणना "वेदानुद्धरते जगान्निवहते" कहकर दशावतारों में की है। श्रीकृष्ण ने युगपुरुष के रूप में अवतीर्ण होकर असम्भव को सम्भव कर दिखाया।

कौरव और पाण्डवों की सेना अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थी युद्ध करने के लिए तत्पर। युद्ध की सारी सामग्री पूर्ण हो चुकी थी। अर्जुन की प्रार्थना के अनुसार श्रीकृष्ण ने उनके रथ को दोनों सेनाओं के मध्य भाग में खड़ा कर दिया था। अर्जुन कौरव की सेना में अपने स्वजनों, मामा, चाचा, पितामह गुरु, आचार्य तथा अनेक सगे सम्बन्धियों को देख युद्ध विभीषिका को चिन्तन कर मोहग्रस्त हो उठते हैं। और युद्ध न करने की घोषणा कर बैठते हैं। यह श्रीकृष्ण जैसे योगेश्वर का कार्य था कि ७०० श्लोकों की गीता को सुनाकर "न योत्स्ये" के विपरीत 'स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव'

कहला लेते हैं। मैं, तू, आत्मा, परमात्मा, जगत्, माया, परा, अपरा, सांख्य, योग, ज्ञान जैसी गूढ़ ग्रन्थियों को सुलझा देते हैं। जन्म पर्यन्त अध्ययन साध्य विषय को कुछ ही घण्टों में समाहित कर देते हैं। तू क्या है, परमात्मा क्या है। ऐसे असंख्य प्रश्न समाहित हो जाते हैं। गीता को सारे ज्ञान की कुन्जी बना देते हैं। युद्ध न करने के अर्जुन के तर्क को भस्मसात कर देते हैं।

"जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद् परिहार्येर्थे न त्वं शोचितु मर्हसि॥" २।२७

जो पैदा होता है, वह मरता अवश्य है, मृत व्यक्ति पैदा अवश्य होता है, इसलिए अपरिहार्य विषय में चिन्ता करना व्यर्थ है। यह गीता का एक उपदेश है। श्रीकृष्ण ने कहा प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् या पान्च भौतिक शरीर कुछ नहीं। आत्मा ही श्रोता, वक्ता तथा द्रष्टा है। वह नित्य है उसे न कोई मार सकता न शस्त्र से काट सकता न अग्नि से जला सकता है वह अच्छेद्य अदाह्य एवं शाश्वत है। जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण वस्त्र का परित्याग कर नूनन वस्त्र धारण करता है। उसी प्रकार आत्मा जीर्ण शीर्ण कलेवर परित्याग कर नूतन कलेवर धारण करती है।

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही" ॥ २।२४

अतः सुख दुःख लाभ हानि जय पराजय का भाव को त्याग अपना शास्त्र-कर्तव्य का पालन करो।

"सुख दुःखे समे कृत्वा, लाभालाभौ जया जयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व, नैवं पाप मवाप्स्यसि ।।" २।२८

श्री कृष्ण की नीति कुशलता की बातों में एक यह भी है कि सामयिक अनेक उपदेशों को दे अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त करना यथा शास्त्र धर्म का पालन, युद्ध करने पर अकीर्ति धिक्कार निन्दा, युद्ध में मरने पर भी स्वर्ग की प्राप्ति तथा विजयी होने पर साम्राज्य की प्राप्ति, फलेच्छा छोड़ कर्तव्य पालन की भावना, यदि अर्जुन युद्ध में प्रवृत्त न होते तो निश्चय था कि लोग उन्हें भय से ही भगा हुआ मानते। गीता के एक एक सिद्धान्त जीवन संघर्ष दूर करने के लिए पर्याप्त है।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" तो सफलता का अमोघ अस्त्र है। इसी में आत्मा तथा मन का गहरा आनन्द छिपा रहता है।

गीता में भक्त जनों की सारी शंकाओं का समाधान हो जाता है, उपासना का सच्चा स्वरूप देखिए।

"मय्येव मन आद्युत्स्व, मयि बुद्धि निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव, अत उर्ध्व न संशय. ।।" १२।८

मन बुद्धि को मुझ में लगा दो ऐसा करने पर मुझे प्राप्त कर सकोगे इसमें सन्देह नहीं, सोते जागते, चलते, फिरते, देखते सुनते, स्पर्श करते, प्रलाप, विलाप हर समय मेरा स्मरण करो।

भक्ति की अति उत्कट अवस्था आत्म समर्पण है, भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए गीता के श्रीकृष्ण ने सामग्रियों की महत्ता नहीं दी। अपितु हृदय का भाव बताया। देखिए—

"पत्रं पुष्पं फलं तोयं, यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत मश्नामि प्रयतात्मनः॥" २।२६

पत्र, पुष्प, फल, जल जो कुछ भक्ति पूर्वक समर्पण करता है उसे ही मैं सन्तुष्ट चित्त हो ग्रहण करता हूं। ईश्वर या श्रीकृष्ण शाश्वत् एवं सार्वकालीन सत्य है। उन्हें देखने के लिये सत् श्रद्धा का होना आवश्यक है, जो श्रद्धालु भाव से सर्वत्र ईश्वर की छाया का अनुभव करता है ईश्वर सर्वदा उसके अनुभव गम्य होते हैं।

"यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति।"

मुक्ति या भक्ति सभी को प्राप्त होने का विषय है। उसके लिये जाति वर्ग शिक्षा सौन्दर्य या ऐश्वर्य का प्रश्न नहीं उठता ज्ञान या भक्ति का होना अपेक्षित है। भागवतकार ने भी कहा है।

"स्त्री, शूद्र, हूण, शबरा, अपि पाप जीव" वहां तक कि पशु-पक्षी तिर्यग्योनि भी उसके अधिकारी हैं। श्रीकृष्ण ने कहा है।"

"मां हि पार्थ व्ययाश्रित्ययेऽपिस्यु पापयोनयः।
स्त्रियोवैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥" ३२

भगवान कृष्ण ने समाज कल्याण के लिये गीता ज्ञान्

ममुद्र का सृजन कर संसार समुद्र के लिये सर्वसुलभ जलयान बनाया है। इसमें सभी वर्गों भक्त कर्म काण्डी ज्ञानी योगी तथा सांख्यवादी का समाधान है। या इनकी ज्ञान पिपासा शान्त होती है। श्रीकृष्ण ने अपनी अपूर्व प्रतिभा, नीतिकुशलता एवं विद्वत्ता का परिचय दिया हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण इतने शान्ति समर्थक थे कि अन्त समय तक युद्ध रोकने की चेष्टा उन्होंने की। पूर्ण युद्ध की तैयारियां होने पर भी पांडवों का दूत बन सन्धि का प्रस्ताव लेकर कौरवों के यहां गये। सर्वप्रथम दुर्योधन ने मार्ग में अभूतपूर्व स्वागत कर भेद नीति अपनायी। उससे काम न चलता देख सन्धि की वातों को ठुकरा कर भोजन के लिये निमन्त्रण दिया, श्री कृष्ण का उत्तर कितना स्पष्ट था।

"सम्प्रीति भोज्यानिह्यन्नानि' सपद्भोज्यानिवा पुनः।
न च सम्प्रीयसे राजन् न चापद्गता वयम्॥"

राजन् किसी के यहाँ भोजन प्रेम या आपन्न अवस्था में किया जाता है। न आप मुझसे प्रसन्न हैं न मैं आपन्न ही हूँ। अतः भोजन का प्रश्न ही नहीं उठता।

भगनान् को न मानने वाले समीक्षक भी इस बात को अस्वीकार न करेंगे कि श्रीकृष्ण अन्याय नहीं देख सकते थे।

युद्ध का निश्चय हो जाने पर अर्जुन तथा दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण से सहायता की प्रार्थना करने गये। श्रीकृष्ण ने दोनों की सहायता करने को कहा। अज्ञानवश दुर्योधन ने निरस्त्र श्रीकृष्ण की अपेक्षा सेना लेना पसन्द किया। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को ही चाहा क्योंकि उन्हें ज्ञात था।

"यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्री विजयो भूतिः ध्रुवा नीतिमतिर्मम" ॥१८॥

भगवान् श्रीकृष्ण को लीला विग्रह कहा जाता है क्योंकि उन्होंने व्रज में रह कर राष्ट्र रक्षा के लिये गोचारण के माध्यम से दुष्टों का दमन तथा अनेक लीलायें की । देखिये ।

"तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्याम् ।
यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रि रजोऽभिषेकम् ॥
यज्जीवितुं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दः ।
त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुति मृग्यमेव ॥"

वृन्दावन में जन्म लेना सौभाग्य की बात है । क्योंकि यहां जन्म लेने पर किसी प्रकार गोकुल वासियों की चरण धूलि की प्राप्ति सम्भावित है । जिनका गायन श्रुतियाँ भी करती हैं ।

"जय जय ह्यजामाजित दोषगृणितमृभाम् ।"

भगवान् श्रीकृष्ण महापुरुष के रूप में भी अनुकरणीय चरित रहे । जो ब्रह्मा, शंकर, प्रभृति देवों के लिये भी स्तुत्य हैं । पूर्ण ब्रह्म, सर्वशक्तिमान्, सर्वगुण सम्पन्न, ध्यानी, योगी, ज्ञानी, नीति धुरन्धर, महा दार्शनिक सब कुछ थे । परन्तु दुर्भाग्य है आज हम भारतीय उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहचान पा रहे हैं । श्री वंकिमचन्द ने ठीक ही लिखा है आदर्शवाद दुर्दशा का कारण हो रहा है । श्रीकृष्ण के चरित का मूल्यांकन बहुत कम हुआ है । गीतगोविन्द के श्रीकृष्ण के सन्निकट अधिक रह रहे हैं । इस उच्च चरित को कितना विकृत रूप दे डालते हैं । क्या जनता थोड़ा कष्ट कर गीतोक्त भगवान् श्रीकृष्ण को समझने का प्रयास करेगी ।

एक भक्त के उद्गार —

गोस्वामी जी की निष्काम-भक्ति

चतुर्विधा भजन्ते माम् जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥
गीता, ७—१६

इस श्लोक में श्री कृष्ण जी ने भक्तों की चार श्रेणियां बतलाई हैं। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी, ये तीनों भेद सकाम भक्तों के है। चौथी श्रेणी ज्ञानी और निष्काम भक्तों की है। इनमें प्रथम तीन श्रेणी के भक्त निम्न श्रेणी के हैं। भक्ति की चरम सीमा निष्काम भक्ति हैं और इस भक्ति को प्राप्त कर लेने पर भक्तों के लिए कुछ वांछनीय नहीं रह जाता, इस प्रकार की भक्ति सर्वथा अहैतुकी होती है। अर्थात् इसका कोई हेतु नहीं होता। इसमें स्वार्थ का लवलेश नहीं रहता। अहैतुकी अर्थात् निष्काम भक्ति ही भक्ति की पराकाष्टा है और इस भक्ति रसामृत का एक बिन्दु भी जिसने पान कर लिया उससे बढ़कर बड़भागी इस संसार में और कौन दूसरा हो सकता है ?

किन्तु संसार में ऐसे बिरले ही भक्त हुए हैं। जिनके हृदय में निष्काम भक्ति जन्म से ही उत्पन्न हुई हो—। अन्य प्रकार के भक्त प्रारम्भ में निम्न श्रेणी के ही भक्त थे किन्तु भक्तिका निरन्तर निश्च्छल हृदय से अभ्यास करते-करते अन्त

में उन्होंने भी निष्काम भक्ति को प्राप्त कर लिया जैसे कि ध्रुव आदि।

प्राचीन काल में हम इस प्रकार अहैतुकी उत्कृष्ट भक्ति बालक प्रह्लाद में पाते हैं। किसी स्वार्थ अथवा हेतु को लेकर प्रह्लाद के हृदय में भगवद् भक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी। बालक प्रह्लाद दिन-रात एक निष्ट भाव से भगवन्नाम का स्मरण एवं कीर्तन किया करते थे। उन्हें स्वयं इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं था कि वे क्यों और किस लिए नाम स्मरण किया करते हैं। उनके हृदय मानस में भक्ति का निर्मल स्रोत अनवरत रूप से प्रवाहित हो रहा था। और उस भक्ति भागीरथी में अपने सम्पूर्ण मन, प्राण, इन्द्रिय को निमज्जित करने में उन्हें एक प्रकार का अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता था। बस इसके अतिरिक्त उनकी भक्ति का उनके अहर्निश भगवन्नाम स्मरण का और कोई दूसरा कारण या हेतु ही नहीं था।

प्रह्लाद की भक्ति से प्रसन्न होकर जब भगवान उन्हें वर देना चाहते थे तो प्रह्लाद ने क्या ही सुन्दर उत्तर दिया है—

यस्तं आशिष आशास्ते न स भृत्यः सवैवणिक्।
आशासानोन वैभृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः॥
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्य मिच्छन्यो राति चाशिशः।

भाग० ७।१०।४-५

अर्थात् हे भगवान्! जो आपसे वरदान पाने की आशा से अर्थात् किसी उद्देश्य या मनोरथ को लेकर आपकी भक्ति

करता है वह सच्चा भक्त सच्चा सेवक नहीं, वह तो प्रेम का वनियां है। वह तो भक्ति का सौदा करता है और उसके वदले में प्रभु से कुछ चाहता है, ऐसे ही जो स्वामी अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए वरदान देना चाहता है, वह भी सच्चा स्वामी नहीं, फिर भी यदि मेरे मालिक मेरी सेवा पर प्रसन्न होकर वर देना ही चाहते हैं तो यही वर दे कि:

कामानां हृद्यसंरोहुँ भवतस्तु वृणे वरम्

मेरे हृदय में कामनाओं की कभी उत्पत्ति हो ही नहीं अहा ! निष्काम भक्ति का कितना सुन्दर परिपाक है। धन्य है इस भक्त प्रवर बालक की यह निष्काम भक्ति और धन्य है वह देश जिसने ऐसे भक्त शिरोमणि को उत्पन्न किया। अपने ऐसे भक्तों को लक्ष्य करके ही तो भगवान ने उद्धव से कहा है कि—

न किञ्चित्साधवो धीरा भक्ताह्ये कान्तिनो मम।
वाञ्छन्त्यपि मयादत्तं कैवल्यम् पुनर्भवम्॥

भागवत ११।२०।३१

मेरे जो अनन्य भक्त भक्ति करने पर भी कैवल्य या मोक्ष की इच्छा तक नहीं रखते वे पवित्र और धीर भक्त ही मुझे प्यारे हैं।

अच्छा यह तो हुई प्राचीन काल के निष्काम भक्तों की बात। अब हमारे हिन्दी-कुल कमल दिवाकर भक्ति भास्कर गुसांई तुलसीदास जी की निष्काम भक्ति का नमूना लीजिए और उनकी भक्ति सुधारस की चासनी चाखिए। आह !

तुलसी की अनन्य निष्काम भक्ति का क्या कहना है ! वह तो पुण्य सलिला भागीरथी की विमल धवल धारा से भी निर्मल, स्फटिक से भी बढ़कर स्वच्छ एवं द्राक्षासिता और इक्षु से भी बढ़कर मधुर है। उसकी मधुरता में जो मादकता है वह संसार में अन्यत्र दुर्लभ है। उस मादकता में जो एक बार मस्त हो गया तुलसी की अनन्य भक्ति का रसामृत जिसने पान कर लिया, उस निश्छल प्रेम का छलकता हुआ प्याला जिसने अपने मुह में आंख मूंद कर उडेल लिया उससे बढ़कर भाग्यवान इस संसार में और कौन है ?

तुलसीदास जी की निष्काम भक्ति कितनी उच्च व गंभीर एवं सरस है इसका अन्दाजा उन्हीं लोगों को मिल सकता है जिन्होंने तुलसी साहित्य सरोवर में गहरे गोते लगाए हैं।

विनय पत्रिका में अपने इष्टदेव भगवान रामचन्द्र जी के प्रति आत्म निवेदन करते हुए इस महामहिम महात्मा ने निष्काम भक्ति पूरित जो उद्गार प्रगट किए है वह तो वास्तव में अनुपम, अतुलनीय तथा अद्वितीय हैं। सारे विश्वसाहित्य में ढूंड जाइए। धार्मिक ग्रंथों का मंथन कर डालिए फिर भी आपको विनय के पद निराले ही प्रतीत होंगे और आपके मुख से बरबस निकल पड़ेगा 'धन्य हैं तुलसीदास और धन्य है उनकी निष्काम भक्ति।'

विनय पत्रिका के मंगलाचरण में ही तुलसीदास जी ने इस भक्ति भावना से परिचय दिया है :—

मांगत तुलसीदास कर जोरे,

बसहि राम सिय मानस मोरे।

तुलसीदास कर जोड़कर बर मांगते हैं लेकिन क्या माँगते हैं ? हम संसारी जीवों के समान धन, दौलत, मान, मर्यादा स्वर्ग यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं माँगते । बस मांग इतनी ही है कि :—

बसहि राम-सिय मानस मोरे ।

एक ही वरदान चाहिए । हृदय में एक ही आकांक्षा है । दिल में एक ही चाह है और वह यही है कि—

अर्थ न धर्म न कामरुचि, गति न जहां निर्बान ।

जनम जनम रति राम पद, यह बरदान न आन ।

उन्हें इसके सिवा और कुछ नहीं चाहिये फिर चाहने को और रह ही क्या जाता है ? और दूसरे पद में तुलसीदास जी कहते हैं :—

तुम बड़े दीनदयाल हो । तुम्हारे समान दानी भी दूसरा कोई नहीं । कह देते कि 'तुलसीदास मेरे' बस मैं इतने ही से कृतार्थ ही जाऊँगा । तुलसी के हृदय में एक ही लालसा है, एक ही अभिलाषा है; वह यह है कि :—

"ज्यों ज्यों तुलसी कृपालु चरण शरन पावैं ।"

चाहे जिस तरह हो तुलसीदास को कृपासागर प्रभु की चरण शरण मिले । और सुनिये महात्मा तुलसीदास अपनी मनो भिलाषा इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

चहौं न सुरगति सुमति, संपति कछु रिधि,सिद्धि विपुल बड़ाई ।

"हेतु रहित अवराग रामपद बढ़ौ अनुदिन अधिकाई ।"

सुगति नहीं चाहि, सुमति नहीं चाहिए; संपति, ऋद्धि सिद्धि बड़ाई कुछ भी नहीं चाहिये। बस यदि चाह है तो केवल ये ही कि राम पद में दिन दिन मेरा अनुराग बढ़ता जाये और वह अनुराग भी कैसा है ? हेतु रहित अर्थात् किसी हेतु या मतलब को लेकर नहीं। बिल्कुल अहैतुक, निःस्वार्थ। यह हेतु रहित अनुराग ही क्यों चाहिये और कोई अभिलाषा या लालसा क्यों नहीं ? इसलिये कि—

अब नाथहि अनुराग जागु जड़ त्याग दुरासा जीते,
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ विषय भोग बहु घीते।

कामनाओं का तो कोई अन्त ही नहीं। इस पर भी यदि विषय भोग की याचना की जाये तो वह कामाग्नि और भी धधक उठेगीं। अतएव 'नाथ में अनुराग जागे' ऐसा उपाय अब करना चाहिये, क्योंकि नाथ में अनुराग जग जाएगा तो फिर काम का नाम ही नहीं रहेगा।

जहाँ राम तहँ काम नहीं, जहां काम नहीं राम।

गुसाईं जी अपने प्रभु से कहते हैं कि यदि दान ही देना है तो—

'तुलसीदास पर किरपा करिय भगति दान देहु आज।'

भक्ति का दान दे दीजिये और किसी वस्तु का नहीं। महात्मा तुलसीदास जी के इस निष्काम भक्ति भाव का परिचय हम उनके अमूल्य ग्रंथ रामायण में अनेक स्थलों पर पाते हैं :—

परमानन्द कृपायतन, मन परिपूरन काम !
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम ॥

नाथ एक वार मांगौ, राम कृपा करि देहु ॥
जनम जनम प्रभु पद-कमल कबहू घटै जनि नेहु ॥

रामदास, तुलसीदास अपने नाथ से मालिक से एक वर मांगते हैं वह वर यदि तुलसी के मालिक देने की कृपा करें तो इस रूप में दें कि अपने चरण कमल में. जन्म-जन्म स्नेह नहीं घटने दें—अर्थात् इस संसार में भले ही बार-बार आना-जाना पड़े, लेकिन इस मालिक के चरण-कमल तुलसी का नेह घटे नहीं। वढ़ता ही रहे। सेवक सेव्य-भाव का कितना सुन्दर चित्र खींचा है। बलिहारी है इस सेव्य सेवक भाव की। तुलसी जैसे सेवक को पाकर कौन मालिक अपने को धन्य नहीं मानेगा? एक दूसरे प्रसंग पर गुसाईं जी बतलाते हैं कि इस शरीर से उन्हें इतनी ममता प्रेम क्यों है?

केवल इसीलिए कि—

सबकर फल रघुपति पद प्रेमा।
तेहि बिन कोई न पावै छेमा॥
इहि तन राम भगति मैं पाई।
तातें मोहि ममता अधिकाई॥
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई।
तेहि पर ममता कर सब कोई॥

इस शरीर से ही तो रामभक्ति करनी है। तो फिर शरीर पर ममता क्यों न हो? लोग स्वार्थ के लिए ही तो ममता करते हैं और तुलसी का भी एक मात्र स्वार्थ अपने प्रभु की भक्ति करना है।

अच्छा अब तुलसीदास के हृदय की एक मात्र लालसा क्या है सो भी उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिए—

छूटी त्रिविधि ईषना गाढ़ी,
एक लालसा उर अति बाढ़ी।
रामचरण बारिज जब देखौं,
तब निज जनम सुफल को लेखौं।

इसमें भक्ति का चरम उत्कर्ष ही निष्काम भक्ति है। इस प्रकार का एक भी निष्काम भक्त जिस देश में हो वह देश धन्य हो जाएगा। उस देश के निवासी अपने आप कृतार्थ हो जाएँगे। माता बसुन्धरा भी ऐसे ही भक्त को पाकर अपने को सनाथा समझती है जैसा कि नारद भक्ति सूत्र में लिखा है—

मोदन्ति पितरो नृत्यन्ति देवताः,
सनाथा चेयं भूर्भवति।'

पितृगण आनन्दित हो उठते हैं। देवतागण नाचने लगते हैं और पृथ्वी सनाथा हो जाती है।' ऐसे ही भक्तों के वश में भगवान हो जाते हैं।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज,
साधुभि ग्रस्त हृदयो भक्तै भक्ति जन प्रियः।

मैं स्वयं स्वतंत्र नहीं हूँ। मैं भक्तों के आधीन हूँ। भक्तों ने मेरे हृदय को ग्रस लिया है। महात्मा तुलसी इसी कोटि के निष्काम भक्त थे। भगवान रामचन्द्र मैं उनकी अनन्य भक्ति निष्काम प्रेम एवं एकनिष्ट अनुराग था। अपने इष्टदेव जानकी जीवन पर बलि जाने के लिये उनका हृश्य आकुल हो रहा था—

जानकी-जीवन की वलि जैहों—

सच्चे रामदास ठहरे न ? हृदय का कोई भाव छिपाया नहीं। हृदय का कपाट बिल्कुल उन्मोचन कर दिया। कलेजा निकाल कर रख दिया। दिल खोलकर रख दिया और दिखाई अपने हृदय में निरन्तर जलने वाली यह अनुराग-आग की ज्वालामयी लपटें, जिनमें पड़कर सारे विषय भोग भस्मीभूत हो रहे थे। गुसाईं जी की रामायण पढ़ने वाले इस देश में लाखों नहीं करोड़ों होंगे। किंतु हमसे तो कितने को उनके जैसी निष्काम भक्ति का शतांश भी प्राप्त हो सका है ? हम में से कितने विषय भोग से विरत होकर उनके समान राम दास बनने में समर्थ हुए हैं ? अभी तो हम कामदास ही बने हुये हैं। आज हम से कितने ऐसे हैं जो तुलसीदासजी की भक्ति भागीरथी की सुशीतल धारा से अपने नीरस हृदय सरोवर को सरसित करके उसमें शतदल पद्म प्रस्फुटित करने की चेष्टा करते हैं ?

महात्मा तुलसीदास अपनी रुचिर रचनाओं के रूप में हमारे लिये जो अमूल्य निधि छोड़ गए हैं उनका उपभोग करना भी तो हम नहीं जानते। आज जो हमारे हृदय में अशान्ति एवं हाहाकार की ध्वनि प्रतिध्वनित होती है, भक्ति गंगा की पावन पुण्यमयी धारा से वंचित होकर हमारा हृदय जो निराशा एवं निरानन्द के कारण नीरस हो रहा है उसे एक बार फिर भक्ति सुधामृत से सरसित करने और मुरझाये हुये प्राणों को भक्ति सजीवनी से संजीवित करने का काम यदि

कोई कर सकता है तो वह है तुलसीदास और उनका अमर साहित्य । इसलिए हे भारतवासियो ! आइये आज हम सब मिलकर भक्तिपूर्वक गुसाईं जी के स्वर में स्वर मिला कर भगवान से यह कह याचना करें कि—

कामिहि नारि पियारि जिमि,
लोभिहि जिमि प्रिय दाम ।
तिमि रघुनाथ निरंतर,
प्रिय लागहु मोहि राम ॥

श्रीमद्भगवद्गीतोक्त योगत्रय मीमांसा

पं० छितानी प्रसाद शास्त्री

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवत्प्राप्ति के ३ मार्ग प्रदर्शित किये गये हैं :—

(१) ज्ञान योग (२) भक्ति योग (३) कर्म योग ।

जब विचार का पूर्णरूपेण विसर्जन होता है । मन में कोई संकल्प विकल्प नहीं उठता । बुद्धि भी शांत हो जाती है । तो यही विचार शून्यता, संकल्प हीनता एवं निर्विकल्पता ज्ञान योग है । शास्त्रवेत्ता पंडित और ज्ञानी में अन्तर है । वेदों, शास्त्रों और पुराणों को पढ़कर विद्वत्ता संपन्न हो भाषण देना और बात है; तत्त्वदर्शी महात्माओं के सान्निध्य में रहकर ब्रह्म आत्मस्वरूप ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर लेना और है । जिस आत्मा या ब्रह्म अथवा परमात्मा को सम्यक् जान कर फिर कुछ जानना शेष नहीं रह जाता जैसाकि उपनिषद् ग्रंथों का तात्पर्य है :—

यस्मिन् विज्ञाते सर्व विज्ञातं भवति तदिदामात्मा ।

अर्थात् आत्मा को जान लेने पर फिर कुछ जानने योग्य नहीं है । अस्तु आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मानव-जीवन कृतार्थ हो जाता है । आत्मा ही ब्रह्म है, यह भी उपनिषद् में कहा गया है । अयमात्मा इससे यह निश्चित हो गया कि जिस ब्रह्म के विषय में लोग तरह-तरह के विवाद करते हैं और कह

नहीं पाते कि ब्रह्म क्या वस्तु है, वह यथार्थ में आत्मा है।

चाहे जितने ग्रथों, शास्त्रों का अध्ययन करके विद्वान् बन जावें परन्तु जब तक अन्तःज्ञान प्राप्त नहीं है वह ज्ञानी नहीं कहा जावेगा। ज्ञानी बनने के लिए तो उसे आत्मद्दष्टा महात्माओं की शक्ति ग्रहण करनी पड़ेगी और जितने भी तत्त्व-दर्शी तथा आत्मानुभूति संपन्न महात्मा एवं ऋषि मुनि हुये हैं उन्होंने श्रीमद्भगवद्गीतोक्त ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग का आश्रय लिया है। क्योंकि गीता शास्त्र में योगत्रय के साथ ही साथ आत्मतत्त्व का सम्यक् विवेचन किया है मन और बुद्धि को आत्मा में लगा देने से निर्विकल्प ब्राह्मी स्थिति प्राप्त हो जाती है। मन और बुद्धि के सर्वथा शान्त तथा शून्य हो जाने पर जब कोई संकल्प-विकल्प न उठे, चिन्ता, शौच व विचार जागृत न हों तभी आत्मानन्द एवं ब्रह्म सुखानुभूति होती है। यही ज्ञान व योग की पराकाष्ठा है।

अहं की की विलीनता तथा उनका विसर्जन भक्ति योग की भूमिका है। भक्त अपनी सत्ता को अपने इष्टदेव भगवान् में लीन कर देता है अर्थात् भक्त की अपनी सत्ता कुछ भी नहीं, जो कुछ हैं भगवान् हैं। प्रेम ही भक्ति योग का विषय है। प्रेम की उन्मत्तता में स्वभावतः अहं का विलीनीकरण हो जाता है। भक्त और भगवान् दो न रहकर एवं इष्टदेव परम प्रभु सर्वसाक्षी भगवान् ही रहते हैं। ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद भक्तियोग में स्वतः आ जाता है प्रेम रूपी जल से भक्ति योग का सागर सदा परिपूर्ण रहता है। कहा भी है कि—

प्रेम गली अति सांकरी ता में दो न समांय।

हे प्रभो ! मैं कुछ नहीं हूँ तुम्हीं हो, इस प्रकार योगयुक्त भक्त के आनन्द का विषय भगवत्कृपा। वह सुख-दुखादि द्वंद्वों में समान रहकर सभी परिस्थितियों में भगवच्चिन्तन स्मरण करता हुआ प्रेमपयोनिधि में गोते लगाता है। उसकी यही प्रार्थना रहती है---राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।

सर्वस्व प्रभु, मैं कुछ नहीं, इस प्रकार सर्वसमर्पण कर देने से इष्टदेव में अहंभाव के सर्वथा विलीन हो जाने से भक्त की मन, बुद्धि, इंद्रिय रूप त्रिवेणी स्वभावतः भगवत्पथ की की ओर प्रवाहित होने लगती है। वह स्थिति भक्ति-योग की चरम-भूमि है।

कर्म योग में अपनी कर्तृत्व बुद्धि का विसर्जन होता है। सभी कार्य प्रभु करते हैं, मैं कुछ नहीं करता हूँ। गुरु गुणों में बरत रहे हैं। मैं करता नहीं हूँ। इत्थ कर्तृत्व बुद्धि का परित्याग कर कर्मयोगी संसार की बाह्य प्रतिक्रियाओं से उन्मुक्त हो आसक्ति से रहित हो जाता है। अपने में कर्तृत्व बुद्धि का परित्याग कर देने से वह कर्मों से बँधता नहीं। पद्मपत्रमिवांभसा रहने से संसार के प्रलोभन उसको मुग्ध नहीं कर सकते। फलतः उसे शान्ति प्राप्त हो जाती है और वह आत्मा में रमण करने लगता है।

उपर्युक्त तीनों मार्गों में से किसी एक मार्ग की पराकाष्ठा में पहुँच जाने पर निर्विकल्प व ब्राह्मी स्थिति स्वतः प्राप्त हो

जाती है। भक्ति योग पथ में आगे चलकर कर्त्तृत्व बुद्धि व विचारों का विसर्जन स्वतः हो जाता है। ज्ञान योग में अहं व कर्त्तृत्व बुद्धि का विसर्जन तथा कर्म योग में विचार व अहं भाव का विसर्जन निसर्गतः हो जाता है। वस्तुतः ये तीनों मार्ग मूलतः एक तथा परस्पर संबंधित हैं।

॥ सत्यमेव जयते ॥

तुलसी-महिमा

गंगा के पुलिन में बिछौ है बर आसन,
विराजें देवरूप, भरो नेह-विसवास है।
पुलकि-पुलकि बांचै विनय की पाती,
सुनि हिय हुलसाती, भीर भारी आस पास है।
नैनन सों आनन्द के आंसू बहि रहे मानो,
भक्ति रस उदधि को मंजुल बिलास है।
ऐसो ध्यान मन में बसत मेरे जाको,
तौन तुलसी सदा को रामचन्द्र जू कौ दास है ।।१।।

देव बानी वैभव को मिलै जो सहारो कछू
सूर के प्रकाश को तुरत अपनाऊँ मैं
मंजुल बिमल रामचरित के मानस में,
उमंगि-उमंगि चिरकाल लौ नहाऊं मैं।
नेह रंग मगे ले के विनय की पाती कर,
नैनन के सोहें राखी सुख सरसाऊं मैं।
तन-मन है के आचरण करूं उनही के,
दास तुलसी के गुण तब कहि पाऊं मैं ।।२।।

घाम, मेघ सीत के रहत बस वह यह,
कैसे हूक बौन कहूँ ऋतु के अधीन है,
जडता मयी है वह चेतना भरी है यह,
वाको रुखो कहें यह सरस नवीन है।
धूरि में धसंति वह, उर बिहसति यह
एक स्वाद वाको यह नवरस लीन है
तुलसी के बिरवासो, भलै के विचारि देखौ
तुलसी की कविता परम परबीन है ।।३।।

—मिश्र-बन्धु

आश्रम समाचार

महाराज श्री के लगातार आश्रम-निवास के कारण सत्संगियों का इस महीने में तांता-सा लगा रहा है। बाहर से भी सैकड़ों मुमुक्ष महाराज जी से आध्यात्मिक ज्ञान लाभ लेते रहे हैं। आश्रम से बाहर भी कई स्थानों पर विशेष गीता जी के सत्संगों का आयोजन हुआ। आश्रम के आनरेरी सैक्रेटरी श्री एच० आर० नन्दा जी के के नूतन भवन (न्यू देहली साउथ एक्तटैशन न्यू देहली) में तीन दिन तक महाराज जी का १५वें अध्याय की व्याख्या में जो प्रवचन हुआ उसे सुनकर श्रावक मंडली बहुत ही आनन्दित हुई ! महाराज श्री सरल सुबोध भाषा में तत्वज्ञान के गम्भीर विषयों को जब समझाते हैं वह सुनने ही योग्य होता है। नरेना में श्री प्रकाश शर्मा जी के घर पर ग्रामीण जनता के समुदाय में महाराज श्री का हृदय ग्राही प्रवचन भक्ति रस पर हुआ। सरल हृदय ग्रामीण सुन कर गद्‌गद् हो गये। वर्षा यद्यपि होती ही रही परन्तु जिज्ञासुओं को बाधाएँ भी नहीं रोक पाईं।

भारतीय विद्या भवन कर्जन रोड, नई दिल्ली में विशेषतया महाराज श्री के प्रवचनों का आयोजन हुआ। मुमुक्षजन अत्यन्त आनंदित हुये।

आश्रम का विशाल भवन जो अत्यन्त सुदृढ़ तथा दर्शनीय होगा, उसके निर्माण कार्यों में आश्रम के आनरेरी सेक्रेटरी श्री एच० आर० नन्दा दिन रात तन, मन, धन से लगे हुये हैं।

भवन का नीचे का भाग बनता जा रहा है। छत भी पड़ चुकी है। शेष निर्माण-कार्य भी तत्परता से चल रहा है।

आश्रम के पवित्र सात्विक एवं भक्ति रसपूर्ण वातावरण में हजारों सांसारिक मुमुक्ष अपने जीवन कल्याण के लिये उपयोगी ज्ञान-प्राप्त करने आते ही रहते हैं। ज्ञान की भागीरथी में स्नान करते ही रहते हैं। कीर्तन का भी बहुत ही सुन्दर आयोजन समय समय पर होता ही रहता है। सैकड़ों सद्गृहस्थों की महिलाएँ इस पुण्य-संयोग में सम्मिलित होती रहती है।

—दर्शक

गुरु प्रसाद

का

राष्ट्र रक्षा अंक

नूतन वर्ष के उपलक्ष्य में अपनी जननी जन्म-भूमि भारत-वर्ष की महानता, उसकी गौरव गाथा, उसके ऊपर आए संकटों का वर्णन एवं उसके निवारण के उपायों पर पठनीय सुन्दर सामग्री होगी। देश भर के चोटि के विद्वानों की इसमें उत्कृष्ट लेखिनी का चमत्कार देखने को मिलेगा।

लेखकों से प्रार्थना है कि वह अपनी खोजों के आधार पर उत्तम सामग्री लेखों के रूप में भेजें। गुरु प्रसाद के ग्राहकों से निवेदन है कि यह अंक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं संग्रहणीय होगा। स्वयं पढ़ें तथा इसके अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर अपनी संस्था तथा अपनी मातृभूमि की सच्ची सेवा करें।

व्यवस्थापक
गुरु प्रसाद
सदर बाजार, दिल्ली कैंट

Edited and published by Shrimati D.K.Kaul for Geeta Ashram, Delhi from Gita Ashram, Sadar Bazar, Delhi Cantt. and Printed by h at Naya Hindustan Press, Chandni Chowk, Delhi-6.

Shri Geeta Ashram, Delhi

Receipt of the following moneys being subscription to Geeta Ashram is thankfully acknowledged :—

Prov. Receipt No.	Regd No.	Name	Amount No.	Adjusted for
		FARIDABAD		
1137	307	Shri Om Prakash Bhatia	4/-	Dec. 62 to March 63
1138	974	Shri Bansi Lal Puchh	2/-	July to August 62
1139	305	Shri Jagdish Lal Kapoor	3/-	July to Sept. 62
1140	226	Shri Hari Singh Khatik	2/-	Dec. 62 & January 63
1141	200	Shri Sohan Lal Rajpal	3 -	Jan. & Feb. 1963
1142	201	Shri Kishan Lal Sharma	5/-	November '62 to March '63
1143	192	Shri Bakhshi Raja Ram	3/-	July '63 to March '63
	198	Shri Shyam Sundar	3/-	
1144	1206	Shrimati Raj Rani	3/-	December '62 to February '63
1145	1204	Shri Balram Ahuja	2/-	December '62 & January '63

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
1146	975	Smt. Prem Kumari Bhatia	3/-	October '62 to December '62
1147	750	Smt. Pushpa Devi	1/-	October 1962
1148			1.25	January 1963
1155	151	Shri Moti Ram Ahuja	2.50	Feb. & March 1963
1149	207	Shri Surendra Kumar Bhargava	3/-	July '63 to March 1963
1150	977	Shri D.C. Talwar	3/-	do
1151	154	Shri Faqir Chand Aura	2/-	February 1963
1153			2/-	March 1963
1152	1394	Shri Sudarshan Kumar Sharma	1/-	March 1963
1154	616	Shri Govardhan Lal Dang	10/-	September '62 to August 1963
1156	197	Shri Jindoo Ram Bhatia	30/-	November '62 to April 1963
1157	901	Shrimati Vimla Devi	6/-	November '62 to April 1963
1158	612	Shri Chela Ram	2.31	November 1962
1159	199	Shri Diwan Chand	9/-	August '62 to April 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
		MATHURA		
1359 1375 1400 1410	576	Smt. Ratan Prabha Khandelwal	15/- 10/- 10/- 5/-	August '62 to March 1963
1360 1383 1398	1088	Shri Bhikhi Lal Goyal	15/- 10/- 5/-	August 1962 to January 1963
1356 1381 1397	131	Shri Santosh Kumar Bhargava	2/- 2/- 2/-	August and September 1962 Oct. & November '62 December '62 and January 1963
1357	1427	Smt. Manjusha Bhargava	20/-	September '62 to August 1963
1361 1382 1388 1395	1425	Shri Suraj Bhan Gupta	6/- 6/- 2/- 4/-	January '62 to March 1963
1376	1210	Shri Kanhai Ram	1/-	January 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
1373			1/-	October 1962
1377	1201	Smt. Chandravati Saksena	1/-	to
1404			1/-	January 1963
1378	1348	Ch. Hari Ram	1/-	November 1962
1379	1385	Shrimati Karmo Devi	1/-	November 1962

NEW DELHI-SAROJINI NAGAR

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
209	1456	Smt. Surya Kumari	7/-	April to October 1963
210	1355	Smt. Chhaya Kulkarni	5/-	April 1963
211	1356	Sri B. V. Kulkarni	5/-	April 1963
212	14	Shrimati Tej Kumari Kaul	10/-	1963
213	1184	Kumari Sarojini Nagpal	12/-	November 1962 to December 1963
214	1059	Shri Beni Prasad Goyal	1/-	August 1962
224			1/-	April 1963
221			1/-	April 1963
222	1457	Smt. Durga Rani Dua	1/-	to
245			1/-	June 1963
223	1482	Shri Daya Nidhi Misra	1/-	January 1963 to
236			3/-	April 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
230	1465	Shri Jagdish Chandra Porwal	2/-	May 1963
242			2/-	June 1963
231	1486	Smt. Sushma Rani Porwal	2/-	May 1963
243			2/-	June 1963
232	1381	Shri Trilok Chand Goyal	2/-	May 1963
233	1415	Shri Kishan Singh Tanwar	2/-	May 1963
234	1355	Smt. Chhaya Kulkarni	5/-	May 1963
235	1356	Shri B. V. Kulkarni	5/-	May 1963
239	1361	Shri Yogendra Pal Singh	2/-	May-June 1963
240	1244	Smt. Ram Pyari Devi Rajput	1/-	June 1963
215	1361	Shri Yogindra Pal Singh	2/-	March and April 1963
216	276	Shri Chhotey Singh	3/	August to October '62
241			1/-	November 1962
228			1/-	December 1962
217	1244	Smt. Ram Pyari Devi	3/-	January-March 1963
227			1/-	April 1963
226	1024	Smt. Tarawati Devi	3/-	March June 1963
249			1/-	
218	1243	Smt. Parvati Devi	3/-	January 1963 May 1963
229			1/-	
244			1/-	

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
219	1245	Smt. Ramkali Gupta	1/-	January 1963
220	1027	Thakur Mahipal Singh	1/-	January April 1963
247			3/-	
225	1025	Shri G R Tucker	3/-	March June 1963
248			1/-	
246	238	Smt. Urmila Nagar	11/-	1963
250	1003	Shri G K Kashyap	6/-	March-May 1963
237	1500	Smt. Sheela Mathur	1/-	May 1963
		MATHURA		
1374			1/-	
1380			1/-	November 1962
1387	1202	Shri Parmanand	1/-	to
1396			1/-	July 1963
1385	160	Shri Nathi Lal Sharma	1/-	November 1962
1386	1383	Shri Suraj Prakash Kohli	1/-	January to
1403			2/-	March 1963
1399	1327	Shri Mohendra Pal Singh	1/-	upto February 1963
1384	1089	Shri Brij Nandan Srivastava	1/-	November 1962
1354	1426	Shri Madan Lal Choudhry	1/-	September 1962

Prov. Receipt No.	Regd No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
1364 1402	1348	Choudhry Hari Ram	1/- 2/-	October 1962 December 1962 and January 1963
		ORAI		
1462	1388	Shri Vijay Shankar Srivastava	10/-	February 1963 to January 1964
1463	1389	Shri Goverdhan Lal Nigam	10/-	February 1963 to January 1964
1464	1390	Shri Durga Prasad	10/-	February 1963 to January 1964
1465	1391	Shri Chandreswar Prasad Singh	10/-	March 1963 to February 1964
1466	1392	Shri Ram Kumar Tiwari	10/-	April 1963 to March 1964
1467	1393	Shri Ram Pal Singh	10/-	April 1963 to March 1964
1468	846	Shri Ram Dayal Singh	10/-	1962
1469	848	Shri Radhey Shyam Jaiswal	10/-	1962
1470	833	Shri Rajendra Kumar Nigam	10/-	1962

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
		GAYA		
1683	1331	Shri Jai Prakash Narayan	1/-	December 1962
1698			1/-	January 1963
1684	1071	Shri Ram Prasad	2/-	October Nov. 1962
1699			2/-	December 1962 and January 1963
1685	1431	Shri Vishveshwari Prasad	1/-	January 1963
1686	1432	Shri Sidheshwar Prasad	1/-	January 1963
1687	1435	Shri Rohini Prasad	1/-	January 1963
1688	1434	Shri Mahavir Prasad	1/-	January 1963
1689	1430	Shri Brij Kishore Prasad	1/-	January 1963
1696			1/-	February 1963
1690	1429	Shri Rajendra Prasad Verma	1/-	January 1963
1697			1/-	February 1963
1691	1436	Shri Janardhan Prasad Sharma	1/-	January 1963
1692	1437	Shri Ramdas Bhagat	1/-	January 1963
1693	1007	Shri Ram Chandra Prasad	3/-	December 1962 to February 1963
1694	1439	Shri Srinivas	7/-	July 1962 to January 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amonnt Rs.	Adjusted for
1695	1330	Shri Vishwambar Lal	1/-	January 1963
1700	1433	Shri Harihar Prasad	1/-	January 1963
		NEW DELHI-GOLE MARKET		
3105 3119 3136	126	Shri M. Haksar	5-/ 5/- 5/-	January-March '63
3156 3128 3146	1219	Shri Rajiv Haksar	1/- 1/- 1/-	-do-
3107 3127 3144	1222	Kumari Malti Haksar	1/- 1/- 1/-	-do-
3108 3126 3145	1220	Kumari Kunti Haksar	1/- 1/- 1/-	-do-
3109 3125 3143	1221	Smt. Sarup Haksar	2/- 2/- 2/-	-do-

Prov. Receipt No.	*Regd. No.*	*Name*	*Amount Rs.*	*Adjusted for*
3110 3121 3137	727	Smt. Sheila Gupta	5/- 5/- 5/-	-do-
3111 3122 3138	640	Smt. Santosh Prakash	5/- 5/- 5/-	-do-
3112 3139	328	Shri B. Sahai	1/- 13/-	January 1963 to February 1964
3113 3135	1217	Smt; Mithlesh Sahai	1/- 12/-	January 1963 to January 1964
3114 3123 3139	1019	Shri T.N. Vyas	1/- 1/- 1/-	January-March '63
3115 3129 3140	1020	Shri Bimla Bhushan Chakraborty	1/- 1/- 1/-	Jannary March '63
3116 3120 3141	327	Shri Babu Lal Sharma	1/- 1/- 1/-	-do-

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
		FARIDABAD		
1160 1171 1189	204	Shri Madan Gopal Gupta	10/- 1/- 1/-	July 1962 to June 1963
1161 1172 1191	977	Shri D.C. Talwar	1/- 1/- 1/-	April to June 1963
1162	1203	Smt. Prem Kumari	1/-	September 1962
1190	975	Smt. Prem Kumari Bhatia	3/-	April to June 1963
1163 1183 1196	1204	Shri Balram Ahuja	1/- 1/- 1/-	February to April 1963
1164 1180 1194	307	Shri Om Prakash Bhatia	1/- 1/- 2/-	April to July 1963
1165 1182 1185	201	Shri Krishan Lal Sharma	1/- 1/- 1/-	April 1963 to June 1963
1166	978	Shri Chandan Sarup Chhabra	4/-	February to May 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
1167 1173	195	Shri Hoshnak Rai	1/- 2/-	October to December 1962
1168	194	Shri Sant Ram Varma	2/-	June-July 1963
1189	226	Shri Hari Singh	1/-	February 1963
1173	784	Shri Shanti Lal Patel	4/-	January-April 1963
1174 1187 1192	1394	Shri Sudarshan Kumar Sharma	1/- 1/- 1/-	April 1963 to June 1963
1175	312	Smt. Pari Bai	5/-	October 1962 to February 1963
1176	1205	Shri Madan Lal Sethi	5/-	October 1962 to Februaay 1963
1177	980	Shri Salig Ram	4/-	January 1963 to April 1963
1178	200	Shri Sohan Lal	3/-	March 1963 to April 1963
1179	974	Shri Bansi Lal Puchh	1/-	September 1962
1181	305	Shri Jagdish Lal Kapur	2/-	October 1962 to
1195 1184 1193	308	Shri Bhairon Lal Mistry	2/- 5/- 4/-	January 1963 January 1963 to September 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
1188	207	Shri Surendra Kumar Bhargava	3/-	April-June 1963
		MATHURA		
1405 1415	131	Shri Santosh Kumar Bhargava	1/- 2/-	March 1963 to May 1963
1406	1327	Shri Mohindra Pal Singh	1/-	February 1963
1407	1201	Smt. Chandravati Seksena	1/-	January 1963
1408	1348	Chaudhuri Hari Ram	2/-	February 1963 to March 1963
		MOFUSSIL		
—	768	Shri V. Shiv Ram, Bombay	30/- 10/-	January February and April 1963 May 1963
—	1438	Kanwar B.S. Parmar, Sulah, Kangra	10/-	March 1963 to February 1964
—	1365	Shri P.S. Gupta, Kidwai Nagar, New Delhi	5/-	February 1963
—	1159	Shri Vijay N. Mathur, Bombay	10/-	January 1963 to May 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
—	4	Dr. Tara Chand Razdan, Dehradun	5/-	March & April 1963
—	760	Shri Satayendra Lal Banerjee, P.O. Balagarh, District Hoogly	10/-	December 1962 to November 1963
—	1170	Shri S.N. Tankha, Kanpur	10/-	October 1962 to September 1963
—	1174	Smt. Mohini Tankha, Kanpur	10/-	-do-
—	871	Kumari Kamini Kaul, Pratap Garh	22/-	February 1962 to December 1962
—	890	Shri Dev Raj Sharma, Ambala Cantt.	2/-	March & April 1963
—	1077	Shri Shyam Nandan Prasad Ambala Cantt.	2/-	-do-
—	1161	Shri Hira Singh, Ambala Cantt.	2/-	-do-
—	1162	Shri Upendra Singh, Ambala Cantt.	2/-	-do-
—	1440	Shri Raj Chand Bhatia, Nainital	10/-	August 1962 to July 1963

ALLAHABAD

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
769	1273	Shri Bansi Dhar Roy	2/-	February & March '63
777			1/-	April 1963
788			1/-	May 1963

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
770 789	1272	Smt. Bhagwan Devi Sharma	2/- 1/-	February & March '63 April 1963
771 778 784	602	Smt. Saraswati Devi	1/- 1/- 1/-	March 1963 to May 1963
772	1378	Dr. Vishva Nath Misra	1/-	April 1963
773 779	601	Smt. Ananti Devi Mehrotra	1/- 2/-	March 1963 April & May 1963
774	1277	Smt. Satya Bhargava	15/-	1963
775	106	Shri Lakshmi Bihari Mathur	25/-	1963
780	438	Smt. Mavisara Devi	12/-	1963
781	1271	Smt. Sudha Bhargava	1/-	April 1963
782	902	Shri Mahesh Kumar Bhargava	4/-	February-May 1963
783	407	Smt. Shiv Devi Bhargava	1/-	December 1962
785	444	Smt. Jagdei Srivastava	1/-	April 1963
786	1274	Smt. Gyanwati Srivastava	2/-	April & May 1963
787	1275	Shri Shyam Sunder Mehrotra	3/-	February to April '63
790	681	Smt. Shakuntala Bhargava	4/-	March to June 1963
791	1506	Shri Surya Nath Nagar	10/-	June 1963 to May '64

Prov. Receipt No.	Regd. No.	Name	Amount Rs.	Adjusted for
		MATHURA Contd.		
1410	1088	Shri Bhikhi Lal Goyal	10/-	March & April '63
1414			5/-	May 1963
1411			1/-	April 1963
1416	1383	Shri Suraj Prakash Kohli	1/-	May 1963
1417			1/-	June 1963
1412	576	Smt. Ratan Prabha Khandelwal	5/-	April 1963
1413	1425	Shri Suraj Bhan Gupta	2/-	April 1963
		MISCELLANEOUS		
—	318	Shri Nardev Singh, New Delhi	10/-	June '62 to May '63
—	1320	Smt. Mahadevi Yadav, Pratap Garh	9/-	April 1963 to February 1964
—	1490	Shri Nand Kishore, Hazari Bagh	10/-	May '63 to April '64
—	144	Smt. H.N. Ganju, Calcutta	13/-	January 1962 to March 1963
—	1475	Smt. Saroj Sirohi, Lashkar, Gwalior	12/-	May '63 to April '64
—	1479	Smt. Rajesh Kumari, Mathur	15/-	-do-

मधुर-लोक-विशेषांक जून-१९८९
धर्मबोध-विवेक विहार

८९ जून विशेषांक में पढ़िये—

सृष्टिकर्त्ता कोई है या नहीं ?

ईश्वरीय ज्ञान क्यों व कैसे ?

आज के युग में वैदिक सिद्धान्तों की प्रासंगिकता—

कर्म फल सिद्धान्त व पाप-पुण्य का प्रश्न—

वैदिक धर्म का अन्य मतों से भेद ?

वैदिक धर्म का आशावाद—

नये व पुराने अंधविश्वासों का विवेचन—

महर्षि दयानन्द व जनजागरण—

महर्षि दयानन्द का तेजोमय व्यक्तित्व एक नास्तिक की दृष्टि में वैदिक अध्यात्मवाद का सुन्दर स्वरूप—

यह उलझन कि विधि सुलझाऊं ? एक मूलभूत प्रश्न का मौलिक उत्तर—

जागरण—(जगराता)

सत्य साईं बाबा

उपरोक्त सब प्रश्नों के उत्तर के लिए तथा वैदिक धर्म, दर्शन व आर्यसमाज के इतिहास पर खोजपूर्ण सामग्री के लिए लेखक के हृदयस्पर्शी विचारों को इस विशेषांक में पढ़िए ।

—सम्पादक

विशेषांक मूल्य—१६ रुपये

सदाचार और नव-निर्माण का हिन्दी मासिक-पत्र

मधुर-लोक

वर्ष - २४ अंक - ८ वार्षिक शुल्क - ३० रुपए

संचालक एवं सम्पादक—राजपालसिंह शास्त्री

विज्ञापन-व्यवस्थापक—देवपाल सिंह आर्य

सम्मानित सम्पादक - प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

अवैतनिक सम्पादक परमेश शर्मा

"मधुर-लोक" कार्यालय

आर्य समाज मन्दिर, २८०४, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

फोन कार्यालय : २६८२३१, फोन निवास : ५१३२०६

"मधुर-लोक" के व्यावहारिक नियम

१. मधुर लोक का वार्षिक मूल्य ३० रुपए है।

२. जो सज्जन ५०१) भेजकर मधुर लोक के ग्राहक बनेंगे वे आजीवन सदस्य होंगे। उनको 'मधुर-लोक' के सभी अंक और विशेषांक भी यथासमय मिलते रहेंगे।

३. 'मधुर-लोक' में प्रकाशनार्थ लेख, कविता आदि प्रकाशनार्थ सामग्री सम्पादक 'मधुर-लोक' सीताराम बाजार, दिल्ली के पते पर भेजिए।

४. 'मधुर-लोक' मासिक पत्र वी. पी. द्वारा मँगायें अथवा ३० रुपए वार्षिक शुल्क मनीआर्डर द्वारा भेजकर नियमित सदस्य बनें।

५. 'मधुर-लोक' प्रत्येक मास की ८-६ तारीख तक भेज दिया जाता है। यदि २० तारीख तक न मिले तो पत्र लिखकर मँगा लें।

६. ग्राहकों को अपना वार्षिक शुल्क समाप्त होते ही भेज देना चाहिए। पत्राचार में ग्राहक संख्या अवश्य दें।

७. नमूना अंक के लिए केवल चार रुपए के डाक टिकट भेजिए।

—सम्पादक